होता है यथा चटकः चटका, अजः अजा, हंसः हंसी आदि और जहाँ यह भेद स्वाभाविक है, लिंगों का निर्धारण केवल स्वेच्छाचारिता पर निर्भर है। लिंग-निर्धारण की स्वेच्छाचारिता इस बात से प्रकट है कि संस्कृत में एक ही पदार्थ के वाचक भिन्न भिन्न शब्द भिन्न भिन्न लिंगी होते हैं यथा पत्नी का वाचक दार शब्द पुल्लिङ्ग, भार्या शब्द स्त्रीलिंग, और कलत्र शब्द नपुंसक लिंग है और शरीर के वाचक काय और तनु शब्द पुल्लिंग और शरीर शब्द नपुंसक है। प्रायः लिंगों का अध्ययन कोष से करना चाहिए।

हिन्दी आदि के विपरीत संस्कृत में तीन वचन होते हैं जिनके प्रयोग की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(३) संस्कृत में एक, द्वि, बहु तीन वचन होते हैं। एकवचन एक या एकाकी व्यक्ति को प्रकट करता है यथा नरः किन्तु कभी कभी वह जाति के लिए भी आजाता है। (जातावेकवचनम्) यथा सिंहः सर्वश्वापदेषु बलिष्ठः।

टिप्पणी— जाति द्योतन करने के लिए एक या बहुवचन का प्रयोग हो सकता है यथा 'ब्राह्मणः पूज्यः' या 'ब्राह्मणाः पूज्याः'।

(४) द्विवचन दो का द्योतक है। यथा अश्विनौ दम्पती किन्तु युग्मवाचक द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व आदि सदैव एकवचन में आते हैं यथा बाहुद्वयं, सुकुमारचरणयुगलम्। किन्तु कई जोड़ों के लिए द्विवचन या बहुवचन का प्रयोग होता है यथा बाहुद्वये, बाहुद्वयानि।

(क) कभी कभी एक ही श्रेणी से संबद्ध स्त्री और पुरुष के लिए

द्विवचन का प्रयोग होता है और एकशेष द्वन्द्व कहलाता है यथा 'जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ' (रघुवंश १, १) में जगत के माता पिता शिवपार्वती को नमस्कार करता हूँ।

(५) हिन्दी में बहुवचन में आने वाले कुछ शब्द संस्कृत में द्विवचन में आते हैं। यथा हस्तौ पादौ चाक्षालयत् = उसने हाथ पैर धोए। स लोचने न्यमीलयत् = उसने आँखें बन्द कीं।

(६) बहुवचन दो से अधिक वस्तुओं का द्योतक है और एकवचन के समान जाति को भी प्रकट कर सकता है यथा शकुन्ताः = पक्षी या पक्षियों की जाति।

किन्तु कुछ नित्य बहुवचन में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ एकवचन के हो होते हैं यथा दाराः = पत्नी, आपः = जल, वर्षाः = वर्षा, सिकताः = रेती, अक्षताः = चावल। असवः = प्राणाः = प्राण।

(क) कभी कभी बहुवचन आदरार्थ आता है यथा इति श्री शंकराचार्याः = महामान्य श्री शंकराचार्य ने ऐसा कहा है।

(ख) यदि वक्ता उच्च श्रेणी का हो तो कभी कभी उत्तमपुरुष में बहुवचन का प्रयोग होता है, यथा– वयमपि भवत्योः सखिगतं किञ्चित्पृच्छामः (अभि० शा० १म अंक) = हम (मैं) भी तुम्हारी सखि के विषय में तुमसे कुछ पूछता हूँ; वयमपि स्वकर्मणि अभियुज्यामहे (मुद्रा० ३ अंक; हम (मैं) भी अपने काम में लगता हूँ। किन्तु यह नियम सार्वत्रिक नहीं है। यथा– किन्त्वरण्यसदो वयमनभ्यस्तरथचर्याः (उत्तररामचरित ५) = किन्तु हम वनवासी रथ पर चलने के अभ्यासी नहीं हैं।

(७) देशों के नाम बहुवचनान्त होते हैं क्योंकि वे उन देशों के वासी मनुष्यों के नाम पर रक्खे जाते हैं। यथा— **अहं यातः कदाचित् कलिंगान्** (दशकुमार २.१०) = मैं एक बार कलिंग देश में गया।

टिप्पणी— किन्तु देशों के नाम के साथ देश या विषय आदि शब्द का योग हो तो एकवचन का प्रयोग होता है। यथा— **मगधदेशे पाटलीपुत्रं नाम नगरम्** = मगधदेश में पाटलिपुत्र नामक नगर है।

(८) व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के बहुवचन बहुधा गोत्र या कुल के बोधक होते हैं, यथा— **रघूणामन्वयं वक्ष्ये** (रघुवंश १.९) मैं रघुवंशियों के कुल का वर्णन करूँगा; **जनकानां रघूणां च संबंधः कस्य नाप्रियः** (उत्तररा. १) = जनकवंशियों और रघुवंशियों का संबंध किसको प्रिय नहीं है।

प्रथम पाठ

(९) जब दो या अधिक परस्पर संबद्ध शब्द एक ही लिंग, वचन, पुरुष या काल के होते हैं तो वे परस्पर संगत कहलाते हैं और इसको संगति या सामानाधिकरण्य कहते हैं।

संस्कृत में (१) कर्ता और क्रिया, (२) विशेष्य और विशेषण, (३) उद्देश्य और विधेय यह तीन प्रकार का सामानाधिकरण्य होता है।

कर्ता और क्रिया का सामानाधिकरण्य

(१०) जिसके विषय में कुछ कहा जाता है या द्योतित किया जाता है वह उस वाक्य में कर्ता या उद्देश्य कहलाता है और वह प्रथमा विभक्ति में होता है। क्रिया का वचन और पुरुष में अपने कर्ता से सामानाधिकरण्य होता है, यथा— **आसीद्राजा शूद्रको नाम** (कादं॰ ५) = शूद्रक नामक एक राजा था, **साधयामो वयम्** (अभि॰ शाकुं॰ १) = हम जाते हैं।

(११) किसी उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह विधेय कहलाता है और वह (पुरुष और वचन सहित) क्रिया या प्रस्तुत या अध्याहृत उस क्रिया के सहित विशेष्य या विशेषण होता है। इन अवस्थाओं में विशेष्य का अपने नियत लिंग में केवल विभक्ति के साथ उद्देश्य के साथ सामानाधिकरण्य होना चाहिए। यथा— **सा कुलपतेरुच्छ्वसितमिव** (अभि॰ शा॰ ३) = मानों वह (शकुंतला) कुलपति का प्राण है; **ककुदं वेदविदां** (मृच्छ॰ १) = जो वेदज्ञों का ठांठ अर्थात वेदज्ञों में मुख्य है।

टिप्पणी— विशेष्य विशेषण के सामानाधिकरण्य के लिए दूसरा पाठ

देखिए

(क) उपर्युक्त दशाओं में प्रयुक्त क्रिया का सामानाधिकरण्य सदैव कर्ता के साथ में होता है, यथा — तस्मात्सखा त्वमसि (उत्तर रा० ५) = इसलिए तू मित्र है।

(ख) जब पात्र, आस्पद, स्थान, पद, प्रमाण, भाजन आदि शब्द विधेय होते हैं तो वे सदैव एकवचन और नपुंसक लिंग में प्रयुक्त होते हैं चाहे उद्देश्य किसी वचन और लिंग का हो और क्रिया का भी उद्देश्य के साथ में सामानाधिकरण्य न होकर कर्ता के साथ सामानाधिकरण्य होता है, यथा — गुणाः पूजास्थानं गुणिषु (उत्तर० रा० ४) = गुणियों में गुण ही पूजा के स्थान हैं, आर्यमिश्राः प्रमाणम् (माल वि० १) = इस में आप ही प्रमाण हैं (आप को सम्मति ही प्रामाणिक है); संपदः पदमापदां (हितोप० १) = संपत्तियां आपत्ति का स्थान हैं, त्वमसि महसां भाजनम् (माल० १) = तू तेजों का पात्र है; विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानां (माल० १) = मैं विविध प्रकार के उसके कटाक्षों का पात्र हुआ। यहां गुणाः पूजास्थानं अस्ति, अहं पात्रमभूत प्रयोग अशुद्ध होंगे, चाहे स्थान और पात्र शब्द वाक्य में कहीं क्यों न रक्खे जायें।

(१२) 'होना', 'हो जाना' 'प्रतीत होना' आदि अपूर्णार्थक सी क्रियाओं के भाव को स्पष्ट या पूर्ण करने के लिए प्रयुक्त संज्ञा या विशेषण प्रथमा विभक्ति में आता है। यथा — यदि सर्गं एष ते (रघु० ३.५१) = यदि तेरा यही निश्चय है; प्रभुर्बुभूषुर्भुवन-त्रयस्य (शिशु १.४९) = त्रिभुवन का स्वामी होना चाहता हुआ, मदनक्लिष्टेय-मालक्ष्यते (अभि० शा० ३) = यह कामपीड़ित प्रतीत होती है।

(क) 'पुकारना' 'नाम रखना' 'बनाना' 'विचार करना' 'समझना' 'निर्वाचित करना'

'नियत करना' आदि अपूर्ण विधयात्मक सकर्मक ~~क्रिया~~ क्रियाओं के कर्मवाच्य में ही यही नियम लागू है; यथा— कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः (हितो० ४) = कुत्ता व्याघ्र बनाया गया; नायं मूर्खो मन्तव्यः = यह मूर्ख नहीं समझा जाना चाहिए।

(१३) जब 'च' से संयुक्त दो वा अधिक संज्ञाएं कर्ता हों तो क्रिया का सामाना-धिकरण्य सब कर्ताओं की सम्मिलित (संयुक्त) संख्या के साथ होता है। यथा— तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी (रघु० १. ५७) = राजा और मागधी रानी ने उन दोनों के चरण पकड़े।

(क) जब संज्ञाएं एक साथ प्रधान न करके पृथक् पृथक् ग्रहण की जाएं वा उन सब का मिलकर एक भाव हो तो एकवचन क्रिया प्रयुक्त हो सकती है। यथा— न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती (माल० २) = न मेरा पिता, न माता, और न तुम मुझ को बचा सकती हो, पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते (हितो० १) = पटुता और सत्यवादिता बातचीत से जानी जाती है।

(ख) कभी कभी क्रिया का सामानाधिकरण्य निकटतम कर्ता के साथ होता है और उसी का शेष कर्ताओं के साथ अध्याहार किया जाता है। यथा— "अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्" (पञ्च० १) दिन, रात्रि और दोनों संध्याएं और धर्म भी मनुष्य के कर्म को जानता है।

(१४) 'वा' से संबद्ध एकवचन कर्ताओं के साथ में क्रिया का भी एकवचन ही प्रयुक्त होता है। यथा— रामो गोविन्दः कृष्णो वा गच्छतु = राम, गोविन्द वा

कृष्ण जावें, "शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतः (उत्तर० ४) = चाहे बाल्यावस्था हो वा स्त्रीत्व तू जगत की माननीय है।

(क) जब भिन्न भिन्न वचनों के कर्ता हों तो क्रिया का सामानाधिकरण्य निकटतम कर्ता के साथ में होता है। यथा— ते वा अयं वा पारितोषिकं गृह्णातु = वे या यह पारितोषिक लेवें।

(१५) जब भिन्न पुरुषों के दो वा दो से अधिक कर्ता 'च' से संयुक्त हों, तो क्रिया का सामानाधिकरण्य उनकी सम्मिलित संख्या के साथ में होता है और पुरुषों में उसका सामानाधिकरण्य मध्यम वा प्रथम पुरुष की उपेक्षा करके उत्तम पुरुष के साथ में और प्रथम पुरुष की उपेक्षा करके मध्यम पुरुष के साथ में होता है। यथा— त्वञ्चाहञ्च पचावः (महाभाष्य) = तू और मैं पकाते हैं। ते किंकरा अहञ्च श्वो ग्रामं प्रतिष्ठेमहि = वे नौकर और मैं कल गाँव को जाएंगे। त्वञ्चैव सोमदत्तश्च कर्णश्च तिष्ठत (महाभाष्य ७.८०.१२) तू, सोमदत्त और कर्ण रहो।

(१६) जब भिन्न भिन्न पुरुषों के दो वा अधिक पुरुषों कर्ता 'वा' से संबद्ध हों तो क्रिया का वचन और पुरुष में सामानाधिकरण्य निकटतम कर्ता के साथ में होता है। यथा— स वा यूयं वैतत्कर्माकुरुत = उसने वा तुमने यह किया। ते वा वयं वेदं दुष्करं कार्यं संपादयितुं शक्नुमः = वे वा हम इस दुष्कर कार्य को कर सकते हैं।

(१७) जब किसी संज्ञा वा सर्वनाम के पूर्व दो वा दो से अधिक कर्ता समान विभक्ति में ही प्रयुक्त हों तो विधेय पद (अन्तिम) कर्ता के साथ

समानाधिकरण्य में होता है। यथा— ~~माता~~ **माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितं** (हितो० १) = माता, मित्र और पिता ये तीनों स्वभाव से ही हितकारी होते हैं।

अभ्यासार्थ संस्कृतवाक्य (एक)

(१) उर्वशी सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य। प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः श्रियः, अलंकारः स्वर्गस्य। (विक्रमो० १)

(२) सर्वो औदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः। (विक्र० ३)

(३) हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या। क एतत्प्रत्येति सैव इयमिति। (उत्तर० ४)

(४) सार्थवाहस्यार्थपतेर्निर्मदको बहिश्चराः प्राणाः। (दशकु० ११. २)

(५) ममापि दुर्योधनस्य शंकास्थानं पाण्डवाः। (वेणी० २.)

(६) त्वं चाहं च वृत्रहन् युजौ संप्रयुज्यावहै (महा०) नियुक्त किए जाएँ

(७) प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्। (वेणी० १)

(८) त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे। (उत्तर० ३.)

(९) बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम्।
निःशंकं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम्॥ (हितो० २)

(१०) तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः। (उत्तर० १.)

(११) इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्। (रघु० ५. ७१.)

(ख)

(१) ~~(क)~~ अस्ति तावदेकदा प्रसंगतः कथित एव मया माधवाभिधानः कुमारो यस्त्व-
मिव मामकीनस्य मनसो द्वितीयं निबन्धनम्। (माल० ३.)

(२) एकस्मिञ्जीर्णकोटरे जायया निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथ-
मपि पितुरहमेवैको विधिवशात्सुनुरभवम्। (कादं० २५.)

(३) देव कापि चांडालकन्यका शुकमादाय देवं विज्ञापयति। सकलभुवन-
तलसर्वरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देवः। विहंगमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिल-
भुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभ-
वितुमिति। (कादं० ८.)

(४) आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥ (हितो० १.)

(५) रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य ~~दूषणम्~~ ॥ दूषणम् ॥ (हितो० १.)

(६) अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे। (रघु० ३.१६.)

(७) निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च। (रघु० ५.२९.)

(८) व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतमानैर्यशोभिः,
सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम्।
अकलितमहिमानः केतनं मंगलानां,
कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः संभवन्ति॥ (माल० २.)

संस्कृत में अनुवाद करो

(१) बंग के राजा ने युद्ध में अपने प्राण खोए।

(२) जब उसने वह भयानक दृश्य देखा तो उसके हाथ और पाँव काँपने लगे।

(३) हे गोविन्द तू मेरे प्राण, मेरा आनन्द, मेरा गौरवधन और मेरा सारा संसार है।

(४) वे अपने किसी अपराध के बिना संदेह का लक्ष्य बने।

(५) अच्छी पत्नियाँ सारे धार्मिक कृत्यों का प्रधान कारण होती हैं।

(६) हे राजन सेना में भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, तू, कृतवर्मा भोज, शकुनि, द्रौणि और मैं हैं।

(७) जब वह अपने घोड़े से गिरा तब राम, गोपाल और हम दोनों उपस्थित थे।

(८) तुम और कृष्ण यह काम संपूर्ण करने का उद्योग क्यों नहीं करते, क्या यह बहुत कठिन है?

(९) आज्ञापालन, सचाई, निरभिमानता, अपने कार्यसंपादन में तत्परता ये सेवक के गुण हैं।

(१०) तुमने, रामने और मैंने दण्डकारण्य में सुख से समय बिताया।

(११) इस संसार में संपदाएँ अनेक आपत्तियों का मूल है।

(१२) हरि का पुत्र परशुराम अपनी कक्षा का फल और अपने कुल का भूषण है।

(१३) वह मनुष्य वा यह बालक इस फल को लेवें।

(१४) हरि और मैं वा तुम और कृष्ण इस काम को कर सकते हैं। उसको न गोपाल और न उसका छोटा भ्राता कर सकता है।

(१५) तुम दोनों, पुष्यमित्र के तीन सेवक और दो अन्य मनुष्य राजसभा में जाने चाहिए।

द्वितीय पाठ

विशेषण और विशेष्य का सामानाधिकरण्य

(१८) यल्लिंगं यद्वचनं या च विभक्तिर्विशेष्यस्य।
तल्लिंगं तद्वचनं सा च विभक्तिर्विशेषणस्यापि॥

विशेष्य का जो लिंग, जो वचन और जो विभक्ति हो विशेषण का भी वही लिंग, वही वचन और वही विभक्ति होती है, चाहे वह क्रियारूपक कृदन्त का, सर्वनाम का वा ~~सर्वनाम~~ गुणवाचक संज्ञा का रूप हो। यथा – गच्छती नारी, का तृप्तिः, तत्सुखं, शोभनानि गृहाणि, शोभनेभ्यः गृहेभ्यः, शोभनाभ्यो वापीभ्यः, हरिं पश्यन्मुच्यते।

टिप्पणी – संख्यावाचक विशेषण साधारण विशेषणों से भिन्न होते हैं। उनके प्रयोग के लिए व्याकरण में विशेष नियम हैं।

(१९) जब विशेषण कर्मधारय वा बहुव्रीहि समासान्त होते हैं तो वे अपने अपरिवर्तित मूलरूप में ही प्रयुक्त होते हैं। यथा – कृष्णः मृगः = काला मृग, रक्तनेत्रा (स्त्री) = लाल नेत्रों वाली स्त्री, रूपवद्भार्या = सुन्दरी पत्नी, गृहीतधनुः = उठाई हुई धनुष, अन्यसंक्रान्तहृदयो नरः = जिसका मन दूसरे में संक्रान्त है।

(क) इसके कुछ अपवाद भी हैं जब समास का स्त्रीलिंग पूर्वपद

(अ) साधारण संज्ञा के रूप में, वा

(आ) पूरणी संख्या के रूप में व्यवहृत हो,

(इ) या जाति वाचक हो,

तो वह स्त्रीलिंग वैसे का वैसा ही रहता है। यथा- दत्ता भार्यः, पञ्चमी भार्यः, शूद्रा भार्यः, इसी प्रकार सुकेशी भार्यः और लोघ्नी भार्यः भी होते हैं।

अधिक विस्तार के लिए पाणिनी के ~~आष्टक~~ अष्टक पर ६, ३, ३४-४१ पर सिद्धान्तकौमुदी देखिए।

(२०) जब भूत या विधि के कर्मवाच्य कृदन्त विशेषण विधेय के रूप में प्रयुक्त हों और जब विशेषण विधेयरूप से प्रयुक्त हों तो क्रियार्थक कृदन्त विशेषण का सामानाधिकरण्य कर्ता के साथ में होता है। (११ वाँ नियम देखो) यथा- मालविका उपायनं प्रेषिता (मालवि० १) = मालविका उपहाररूप से भेजी गई।

(२१) जब एक ही विशेषण से विशिष्ट दो या अधिक विशेष्य हों तो विशेषण का वचन विशेष्यों की संमिलित संख्या के अनुसार होता है। लिंग के विषय में यह नियम है कि जब विशेष्य पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में हो तो विशेषण पुल्लिंग होता है और जब विशेष्य पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग और नपुंसक हो तो विशेषण नपुंसक लिंग होता है। यथा- <u>पक्षपातिनावनयोरहं देवी च</u> (माल० १.) = मैं और देवी इन दोनों के पक्षपाती हैं। तस्मिन्सत्यं धृतिर्ज्ञानं तपः शौचं दमः क्षमः ध्रुवाणि पुरुषव्याघ्रे लोकपालसमे नृपे (महा० ३.५८) = सत्य, धीरता, ज्ञान, तप, शौच, संयम, और शान्ति उस लोकपालसदृश पुरुषरूपी व्याघ्र राजा में निश्चल हैं।

टिप्पणी— इस नियम का आधार पाणिनीयाष्टक का १अ० २पा० ७२सूत्र '**त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्**' है जिसपर '<u>त्यदादितः शेषे पुंनपुंसकतो लिंगवचनानि;</u> सा च देवदत्तश्च तौ; तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि; तच्च देवदत्तश्च ते; यह ~~वार्तिक~~ वार्तिक है।

(२२) किन्तु संस्कृत में बहुधा विशेषण निकटतम विशेष्य के सामानाधिकरण्य में होता है। यथा— '**यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च**' (उत्तर० १.) = जिसकी वीरता से हम और तीनों भुवन कृतार्थ हैं। (भुवनानि कृतीनि); '**कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च**' (माल० १.) कामदेव और नवयौवन प्रकट किए गुणवाला है। यहाँ हम को लिंगपरिणाम की प्रक्रिया का अनुगामी होना चाहिए अर्थात् अगले विशेषण के साथ में पुनः लिंग का अध्याहार कर लेना चाहिए।

संबन्धवाचक-सर्वनाम और उसके ~~पूर्व~~ पारस्परिक-संबन्ध-द्योतक शब्द का सामानाधिकरण्य

(२३) संस्कृत में संबन्धवाचक सर्वनाम और उसके पारस्परिक संबन्ध-द्योतक संज्ञा से के सामानाधिकरण्य की कोई प्रमुख विशेषता नहीं है। संबन्धवाचक सर्वनाम की विभक्ति अपने वाक्य के संबन्धानुसार निर्धारित होती है। संस्कृत के अन्य सर्वनामों के समान यह संबन्धवाचक सर्वनाम एकाकी रह सकता है या किसी का विशेषण बनकर प्रयुक्त हो सकता है। संबन्धवाचक

सर्वनाम संबन्धवाचक वाक्य में जिस संज्ञा को निर्दिश करता है साधा रणतः उससे पहिले आता है; अथवा संबन्धवाचक सर्वनाम एकाकी रह सकता है और पूर्व पारस्परिक संबन्धद्योतक संज्ञा निर्देशक सर्वनाम के साथ आती है; और कभी कभी पूर्वपारस्परिक संबन्ध-द्योतक संज्ञा का प्रयोग ही नहीं होता। यथा – **अन्तर्यो मृग्यते स स्थाणुर्वो शिवायास्तु** (विक्रमो॰ १.) = जो हृदय में ढूंढा जाता है वह शिव तुम्हारा कल्याण करे। **बुद्धिर्यस्य बलं तस्य** (पञ्च॰ . ६) = जिसकी बुद्धि होती है, उसी का बल होता है। (ज्ञान ही बल है।) '**धिगस्मान् सर्वान् ये एकाकिना बटुना सह युध्यामहे** = हम सबों को धिक्कार जो अकेले बालक से लड़ रहे हैं।

(४) जब संबन्धवाचक सर्वनाम का विधेय पारस्परिक संबन्धद्योतक संज्ञा से भिन्न-लिङ्गी विशेष्य हो तो संबन्धवाचक सर्वनाम का सामानाधिकरण्य साधारणतः विधेय के साथ होता है। यथा – '**शैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य**' (रघु॰ ५. ५४) = जो शीतलता है वह जल का स्वभाव है; '**मातुस्तु यो-तुकं यत्स्यात्कुमारी भाग एव सः**' (मनु॰ ६. ३१) = जो माता का जहेज़ हो वह कुमारी का ही हिस्सा होता है।

विशेष टिप्पणी – ऊपर के उदाहरणों से प्रकट होता है कि नित्य संबन्धी सर्वनाम का लिङ्गविषयक सामानाधिकरण्य अपनी विशेष्यभूत संज्ञा के साथ होता है किन्तु पाणिनी का '**कर्मणा यमभिप्रेति स**

(तत्) सम्प्रदानम् (१.४.३२) यह सूत्रबद्ध वाक्य इस का अपवाद देखा जाता है। इसमें 'स' का लिङ्गविषयक सामानाधिकरण्य विशेष्य 'संप्रदानम्' के साथ न होकर 'यम्' के साथ है

(२५) जब संबन्धवाचक सर्वनाम सारे वाक्य का निर्देश करता है तब वह नपुंसक एकवचन में यत् के रूप में प्रयुक्त होता है। यथा "ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्ष्याः" (विक्र० १.) = यह इन्द्र का ही पराक्रम है कि उसके मित्र शत्रुओं को जीतते हैं। "मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः" (माल० ...) = जो संसार में यह आँखों की चांदनी मेरे दृष्टिगोचर हुई वही मेरे जीवनभर का महोत्सव रहे।

ऐसी अवस्थाओं में प्रधान वाक्य में निर्देशक सर्वनाम का वही लिङ्ग होता है, जो पारस्परिक संबन्धद्योतक संज्ञा का लिंग हो और यत् के नपुंसक होने से नपुंसक नहीं होता जैसा कि ऊपर "स:" का लिंगविषयक सामानाधिकरण्य "महोत्सवः" के साथ है।

अभ्यासार्थ संस्कृत-वाक्य (क)

(१) तयैव देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रमाणीकृते (... २.)

(२) यदेते चन्द्रसरोरक्षकास्त्वया निःसारितास्तदनुचितं कृतम् (हितो० ३.)

(३) यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः।
अकुलीनः कुलीनो वा स श्रियो भाजनं नरः॥ (पञ्च० १.८.)

(४) कृतोः शरण्यं हरिणा तवासुरः,

शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्। (शकु० ६.)

(५) स सुहृद् व्यसने यः स्यात् स पुत्रो यस्तु भक्तिमान्।

स भृत्यो यो विधेयज्ञः सा भार्या यत्र निर्वृतिः॥ (~~पञ्च~~ पञ्च० १.१२.)

(६) पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी।

कृतोपवासाः कौरव्य प्रययुः प्राङ्मुखास्ततः॥ (महा० १०.१.२६.)

(७) धर्मः कामश्च दर्पश्च हर्षः क्रोधः सुखं वयः।

अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न संशयः॥ (रामा० ६.६२.३७.)

(८) उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ।

तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ॥ (रघु० ३.२३.)

(ख)

(१) धन्या सा यार्यपुत्रेण बहु मन्यते या चार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशानिबन्धनं

जाता जीवलोकस्य। (उत्तर० ३.)

(२) सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता

यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः। (उत्तर० ३.)

(३) न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।

नाहं न जनको नाग्निर्नानुवृत्तिर्न सन्ततिः॥ (उत्तर० ७.)

(४) यं ब्राह्मणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।

उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयुज्यते॥ (उत्तर० १.)

(५) चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां ~~भीमकर्मणाम्~~ भीमकर्मणाम्।

त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः॥ (उत्तर० २.)

(६) रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः॥ (हितो० १.)

(७) मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः,
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम्।
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपद्॥ (हितो० १.)

(८) यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः॥ (हि० १.)

(९) हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं,
व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः।
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः॥ (भर्तृ० ३.१०)

(१०) महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया॥ (रघु० १०.३२.)

(११) यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि॥ (महा० ६.६.२६)

संस्कृत में अनुवाद करो

(१) इस नगर में बहुत से अच्छे मनुष्य हैं किन्तु वे पिशुन, दुःशील और संकीर्ण-हृदय मनुष्यों से घृणा किए जाते हैं।

(२) पाटलिपुत्र का राजा और उसकी रानी दोनों बहुत उदार हैं।

(३) मैंने कल तीन सुन्दर झील, छः गहरे कुवें और छप्पन विशाल उद्यान देखें।

(४) जो अपने पाप छिपाने के लिए झूठ बोलता है वह दो पाप करता है।

(५) तुम ऐसा कहो यह निश्चय आश्चर्य है।

(६) मनुष्य को सदैव धर्मशील होना चाहिए यह प्राचीन और वर्तमान सभी विचारकों का मत है।

(७) यह मधुर आम उपहाररूप में मेरे छोटे भाई से भेजे गए हैं।

(८) दुःशील मनुष्य धार्मिकों से घृणा करते हैं यह केवल उनकी स्वाभाविक प्रकृति है।

(९) जो मनुष्य प्रत्युत्पन्नमति हैं वे आपदाओं का तर सकते हैं।

(१०) इस दुर्घटना के कारण मैं उनकी ईर्ष्या का पात्र बना।

(११) धैर्य, परिश्रम और निष्कपटता सदैव प्रशंसनीय हैं; किन्तु अविमृश्यकारिता, आलस्य और अश्रद्धा गर्हणीय हैं।

द्वितीय भाग
कारक-प्रकरण
तृतीय पाठ
कर्म (द्वितीया विभक्ति)

(२६) अब हम कारक अर्थात् वाक्यों में शब्दों के व्याकरणशास्त्रीय संबन्ध को नियमित करने वाले साधारण सिद्धान्त का वर्णन करेंगे। कारक की शक्ति से किसी संज्ञा या सर्वनाम की विभक्ति के साथ किसी शब्द के संबन्ध का नियमन किया जाता है। इस भाग के पाठों में इसी शक्ति की व्याख्या उद्दिष्ट है।

(२७) कारक वाक्य में किसी संज्ञा और क्रिया के संबन्ध का नाम है इसलिए शब्दों में क्रिया से स्थापित न होने वाला संबन्ध कारक नहीं कहलायगा। संस्कृत में छः कारक **कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान,** और **अधिकरण** हैं, ये संबन्ध कारक न माने जाने वाली षष्ठी विभक्ति के अतिरिक्त सातों विभक्तियों से संबन्ध रखते हैं कर्ता प्रधानतः करण का भाव रखता है और उसका अर्थ करने वाला है अन्य भाषाओं के समान संस्कृत में प्रथमा विभक्ति या कर्ता केवल नाम का निर्देश करता है और वह अभिधान से संबन्ध रखता है पाणिनी के '**प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**' (२-३-४६) के अनुसार प्रथमा केवल प्रातिपदिक (अविभक्तिक शब्द), लिंग, परिमाण और वचन को प्रकट करने के लिए आती है; यथा — नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानं, तटः—टी—टम्, द्रोणो व्रीहिः, एकः, द्वौ, बहवः आदि।

टिप्पणी— कुछ अव्ययपद किन्हीं विशेष कारकविभक्तियों के योग में किन्हीं संज्ञाओं के साथ में प्रयुक्त होते हैं, और ऐसी विभक्तियों को कारकविभक्ति (क्रिया से संबद्ध विभक्ति) से भिन्न उपपद विभक्ति (अव्यय से संबद्ध विभक्ति) कहते हैं; यथा — <u>नमो नृसिंहाय</u>; <u>मामन्तरा</u>; <u>ग्रामाद् दूरम्</u> आदि। उपपद विभक्ति से कारकविभक्ति बलवान् होती है क्योंकि जहाँ उपपद विभक्ति और कारकविभक्ति दोनों होती है वहाँ कारकविभक्ति ही होती है।

(२८) जिस मनुष्य या पदार्थ में क्रिया के व्यापार का फल रहता है वह कर्म कहलाता है। कर्मवाच्य को छोड़कर कर्म द्वितीया विभक्ति में रहता है। यथा— **स हरिमपश्यत्; ओदनं बुभुक्षुः विषं भुङ्क्ते** (सि० कौ०) = भात खाने का इच्छुक विष खाता है। यहाँ 'हरि' और 'विष' 'अपश्यत' और 'भुंक्ते' क्रिया के कर्म हैं। किन्तु 'हरिः सेव्यते' इस कर्मवाच्य में 'हरिः' और 'सेव' के मध्य वर्तमान कर्म और क्रिया के संबन्ध को 'सेव्यते' प्रकट करता है और इसलिए 'हरिः' को द्वितीया विभक्ति में रखने की आवश्यकता नहीं है परन्तु 'हरिं सेवते' में कर्मवाच्य का प्रत्यय न होने के कारण हरि द्वितीया में रक्खा गया है।

(२९) नाम लेना, स्वीकार करना, बनाना, नियत करना, पुकारना, जानना, विचारना आदि अर्थ वाले और उनकी समानार्थक क्रियाओं के योग में एक प्रधान कर्म के अतिरिक्त गौण कर्म भी रहता है। यथा— **त्वामामनन्ति प्रकृतिं** (कुमार० २.१३) = वे तुम को प्रकृति मानते

है। कामपि गणिकामवरोधमकरोत् (दश० २.६.) = उसने किसी वेश्या को भार्या बनाया। जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं (मेघ० ६.) = मैं तुझको मुख्यमंत्री जानता हूँ

(३०) गतिद्योतक समस्त क्रियाओं के योग में द्वितीया विभक्ति होती है यथा—

गतोऽहं कामदेवायतनं (माल० १.) = मैं कामदेव के मन्दिर में गया।

अहमपि महीमटन् (दश० २.२.) = मैं भी पृथ्वी पर घूमता हुआ।

यमुनाकच्छमवतीर्णः (पञ्च० १.१) = यमुना की दलदल में उतरा हुआ। विचचार दावं (रघु० २.८) = वन में घूमता था। किन्तु गति का यह भाव कुछ ऐसे व्यवहारों में भी प्रकट किया जाता है जहाँ गति ~~स्वाभाविक~~ वास्तविक न हो कर केवल काल्पनिक होती है। यथा— परं विषाद-मगच्छत् (पञ्च० १.१.) = वह परम खेद को प्राप्त हुआ। अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते (वेणी० ३.) = क्या अश्वत्थामा तुमको स्मरण नहीं आया। पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम (कुमार० १.२६.) = पश्चात् वह सुन्दर मुख वाली उमा नाम को प्राप्त हुई। नरपतिहित-कर्ता द्वेष्यतां याति लोके (पञ्च० १.१.) = राजा का हित करने वाला संसार के द्वेष को प्राप्त होता है। न तृप्तिमाययौ (रघु० ३.३) सन्तुष्टि को प्राप्त नहीं हुआ।

(क) साधारणतः उपसर्गों से युक्त अकर्मक क्रियाएँ सकर्मक हो जाती हैं और तब उनके योग में द्वितीया आती है, यथा - अनुवृत्, प्रभुचित्त-मेव हि जनोऽनुवर्तते (शिशु० १५.४१) = मनुष्य प्रभु के

→ चित्त का ही अनुसरण करते हैं। **अचलतुंगशिखरमारुरोह** (कादं० १२०) = पर्वत के ऊँचे शिखर पर चढ़ गया। **यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं** (रघु० ३७) = हाथीवान ने हाथीवान पर आक्रमण किया। **नोत्पतति आ दिवं** (कादं० १३२) = आकाश में नहीं उड़ता है। **ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति** (उत्तर० १) = अर्थ आदिकाल के ऋषिओं की वाणी का अनुगमन करता है।

(३१) शी (सोना), स्था (ठहरना), आस (बैठना), इन धातुओं से अधि उपसर्ग पूर्व हो तो क्रिया का आधार कर्म होता है अर्थात वह द्वितीया विभक्ति में आता है※ यथा- **चन्द्रापीडो मुक्ताशिलापट्टमधिशिश्ये** (कादं० २०६) = चन्द्रापीड मुक्ताजडित शिला पर सोया। **अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ** (रघु० ६.७३) = इन्द्र के अर्धासन पर बैठा। **अध्यास्य पर्णशालां** (रघु० १.९५) = पर्णकुटीर में रहकर।

(क) अभि नि उपसर्ग पूर्वक विश धातु के योग में भी द्वितीया विभक्ति आती है॥ यथा- **अभिनिविशति सन्मार्गं** (सि० कौ०) = सन्मार्ग में लगता है। **भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम्** (मुद्रा० ५) = स्वामी से सेवक को भय होता है।

(३२) उप, अनु, अधि और आ उपसर्ग पूर्वक वस धातु के योग में भी वास का आधार द्वितीया विभक्ति में आता है× यथा- **उप- अनु- अधि-**

॥ अभिनिविशश्च (१।४।४७)। × उपान्वध्याङ्वसः (१।४।४८)। ※ अधिशीङ्स्थासां कर्म (१।४।४६)।

आवसति वैकुण्ठं हरिः (सि॰कौ॰) = हरि स्वर्ग में रहता है।

(३३) अभितः, सर्वतः, धिक् और समीपता के भाव के द्योतक आम्रेडितान्त उपर्युपरि, अधोऽधः, अध्यधि तथा प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति होती है ×

यथा- **उभयतो कृष्णं गोपाः** (सि॰कौ॰) = कृष्ण के दोनों ओर गोप हैं। **सर्वतः कृष्णं** (सि॰कौ॰) = कृष्ण के चारों ओर। **उपर्युपरि लोकं हरिः** (सि॰कौ॰) = हरि संसार के ठीक ऊपर है। **अधोऽधो लोकं** (सि॰कौ॰) = संसार के ठीक नीचे। **धिक् जाल्मान्** (उत्तर॰५॰) = दुष्टों को धिक्कार। **न मे संशीतिरस्या दिव्यतां प्रति** (कादं॰१३२॰) = मुझको उसकी दिव्यता में संशय नहीं है। **बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्** (महा॰) = भूखे को कुछ नहीं भाता है। जब समीपता का द्योतन न हो तो षष्ठी का प्रयोग हो सकता है यथा- **उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा** (महा॰) = अपने तेज से सूर्य के समान सबके ऊपर ऊपर।

टिप्पणी— कभी कभी धिक् के योग में प्रथमा वा संबोधन भी होता है यथा- **धिङ्मूढ** = हे मूढ तुझको धिक्कार। **धिगियं दरिद्रता** (पञ्च॰) = निर्धनता को धिक्कार।

(३४) अभितः, परितः, (दोनों चारों ओर के अर्थ में) समया, निकषा (दोनों निकट के अर्थ में), और हा (शोक के अर्थ में) के योग में द्वितीया विभक्ति

× उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ (कात्यायन - वार्तिक)

आती है*। यथा — **परिजनो राजानमभितः स्थितः** (माल० १.) = सेवक राजा के चारों ओर खड़े थे। **रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थत** (भट्टि० १.१२) = वेदी के चारों ओर के राक्षसों को नष्ट किया। **ग्रामं समया - निकषा** (सि० कौ०) = या ग्राम के निकट। **निकषा सौधभित्तिं** (दश०) = चूने की दीवार के निकट। **(पयोधिं) विलंघ्य लंकां निकषा हनिष्यति** (शिशु० १.६८) = समुद्र को उतर कर लंका के पास पहुँचेगा। **हा कृष्णाभक्तं** (शिशु०) = कृष्ण के अभक्त पर शोक। कभी २ हा संबोधन के साथ में भी आता है। यथा — **हा भगवत्यरुन्धति** (उत्तर० १.)*।

(३५) अन्तरेण (बिना, अतिरिक्त), तद् (विषय के अर्थ में) के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है१। यथा — **कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुं** (वेणी० ३.) तुम्हारे बिना और कौन इसका प्रतीकार करने में समर्थ है। **भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या: दृष्टिरागः** (शाकु० २.) = तुम्हारे विषय में इसकी आँख की ~~प्रीते~~ प्रीति कैसी है।

टिप्पणी — अन्तरा (मध्य के अर्थ में) के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा — **अन्तरा त्वां च मां च कमण्डलुः** (महाभाष्य) = तेरे और मेरे बीच में कमण्डलु है। **पंचालास्तव पश्चिमेन तइमे वामा गिरं भाजनास्त्वद्दृष्टेरतिथीभवन्तु यमुनां त्रिस्रोतसं चान्तरा** (माल० १०) = पश्चिम की ओर से गंगा और यमुना के बीच में स्थित ये पाञ्चालदेश तेरी दृष्टि के पात्र हों और स्त्रियाँ वाणी की पात्र हों।

---

* समयानिकषा हाप्रतियोगेऽपि (वार्तिक)।

१. अन्तरान्तरेण युक्ते (२।३।४)

(३६) काल और देश का अत्यन्त संयोग अर्थात् सातत्य या व्यापक संसर्ग द्योतन करने वाले शब्दों के योग में भी द्वितीया विभक्ति आती है ¹ । यथा — **न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्षः** (दश० २.६.) = १२ वर्ष तक लगातार इन्द्र ने वर्षा नहीं की (सातत्य)। **क्रोशं कुटिला नदी** (सि० कौ०) = एक का कोश तक नदी तिरछी चली गई है (व्यापक संसर्ग)। **सभा वै श्रवणो राजन् शतयोजनमागता** (महा० २.१०.१.) = हे राजन् विश्रवा (रावण का पिता) की सभा सौ योजन विस्तीर्ण है।

(३७) जब अनु लक्षण अर्थात् 'पीछे' 'किसी के परिणाम में' 'किसी से सूचित करके' 'किसी के सदृश' इन अर्थों में हो तो उसके योग में द्वितीया आती है। यथा — **जपमनु प्रावर्षत्** (सि० कौ०) = जप के पीछे वर्षा हुई। **सर्वं मामनु ते** (विक्र० ४) = तेरा सब कुछ मेरे पीछे है (मेरे सदृश है)। **वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्** (सि० कौ०) = वृक्ष पर बिजली चमक रही है।

(क) निम्नलिखित उपसर्ग जब निम्नलिखित अर्थों में हों तो उनके योग में द्वितीया विभक्ति आती है। उपसर्ग जब किसी क्रिया के साथ में अन्वित न होकर किसी संज्ञा के साथ में अन्वित होते हैं और उनके योग में वह संज्ञा किसी विशेष विभक्ति में आती है तो वे कर्मप्रवचनीय कहलाते हैं।

* अभि 'पूर्व—निकट में, के अर्थ में, यथा — **हरिमभिवर्तते** (सि० कौ०) = वह हरि से पहले है। **भक्तो हरिमभि** = हरि में (का) भक्त।

४ उप 'अधिक (उत्कृष्टतर) तथा हीन के अर्थ में'। यथा — **उप हरिं**

---

* अभिरभागे (१।४।९१) । ४ उपोऽधिके च (१।४।८७) ।

सुराः (सि॰कौ॰) = देवता हरि से हीन हैं।

१ अति 'अतिक्रमण (उत्कृष्टतर) के अर्थ में'। यथा— **अतिदेवान्**

कृष्णः (सि॰कौ॰) = कृष्ण देवताओं से उत्कृष्टतर है।

२ अनु 'के साथ साथ' (किनारे किनारे), 'बराबर बराबर और हीन' के अर्थ में, यथा— **नदीमनु अवसिता सेना** (सि॰कौ॰) = नदी के किनारे किनारे सेना पड़ी है। **अनु हरिं सुराः** (सि॰कौ॰) = देवता हरि से हीन हैं।

---

१ अतिरतिक्रमणे च। (१-४-९५)।

२ तृतीयार्थे (१-४-८५) (अनोः साहित्यमेव तृतीयार्थः संभवति)।

अभ्यासार्थ संस्कृत-वाक्य (क)

(१) धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्ता शरच्छतम् (माल०१.) (अत्यन्तसंयोग)

(२) बिंदूत्क्षेपान् पिपासुः परिपतति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रम् (माल०२.) (गति)

(३) मन्दोत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति (शकु०१.) (प्रति योग)

(४) एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। (शकु०३.) (अधि+शी, अनु+आस्)

(५) सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते। (शकु०३.) (अन्तरेण)

(६) स राजर्षिरिमानि दिवसानि प्रजागरकृशो लक्ष्यते (शकु०३.) (अत्यन्त संयोग)

(७) धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्। (शकु०६.) (धिक्)

(८) धिगियं देहभृतामसारताम्। (रघु०५.२१) (धिक्)

(९) इष्टान्देशान्विचर जलद प्रावृषा संभृतश्रीः (मेघ०११८.) (गति)

(१०) कृतकार्यमिदं दुर्गं वनं व्यालनिषेवितम्।
यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः॥ (रामा० ११.९८.१३) (अध्यास्)

(११) धिक् प्रहसनम्। अयमृष्यशृङ्गाश्रमादरुन्धतीं पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वशिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि। (उत्त०४.) (धिक्, अधि+ष्ठा)

(१२) तत्र च निखिलधरणितलपर्यटनखिन्नस्य निजबलस्य विश्रामहेतोः कतिपयान् दिवसानतिष्ठत्। (कादं०११९.) (अत्यन्तसंयोग)

(१३) अस्यां वेलायां किं नु खलु मामन्तरेण चिन्तयति वैशम्पायन इति चिन्तयन्नेव स निद्रां ययौ। (कादं०१७८.) (अन्तरेण, गति)

(१४) अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥ (शाकु० ४.) परितः

(१५) शक्रस्य दिव्या सभा
विस्तीर्णा योजनशतं शतमध्यर्द्धमायता।
वैहायसी कामगमा पंचयोजनमुच्छ्रिता ॥ (महा० ११.७.३.)

(१६) रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्यां
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास। (रघु० ५.६३.) अधिवस

(१७) तस्य पुत्रो महातेजाः संप्रत्येष पुरीमिमाम्।
आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः॥ (राम० १.४७.१७.)

(१८) क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्। (रघु० ११.२४.) अनुयोग

संस्कृत-वाक्य (ख)

(१) सत्कृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽसि। (शाकु० ५.) अन्य अन्तरेण।

(२) कथय कथमियन्तं कालमवस्थिता मया विना भवती। (विक्रमो० ४.) अत्यन्त संयोग

(३) भाव प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लंकासमरसुहृदो महात्मानः प्लवंगराक्षसा नानादिगन्तागता ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च येषामाराधनायेयतो दिवसानुत्सव आसीत् (उत्तर० १.)

(४) विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना, त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितं (कुमार० ५.८१.)

(५) धिग्विधातारमसदृशसंयोगकारिणम्। (काद० १२.)

(६) आर्य आर्यं प्रणिपत्य देवश्चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति क्रियान्तरान्तरायमन्त-

रेणार्थं द्रष्टुमिच्छति। (मुद्रा० ३.)

(७) मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः

पंकच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥ (माल० २.)

(८) भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम् (मेघ० १०२.)

(९) अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् ।(रघु० ५.२८.)

(१०) मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि

विवेश मंचान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा । (रघु० ६.१०.)

(११) अभित्यजि त्वथास्त्वं मे कथेनाधाहता मनः।

तवाप्यध्यावसन्तं मां मा रौत्सीर्हृदगं तथा ॥ (भट्टि० ८.८०.)

(१२) अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।

आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः॥ (पञ्च० १.४)

(१३) हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।

एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम् ॥(उत्तर०१.)

(१४) यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवा मे,

यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।

एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि,

गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥(उत्तर० ३.)

(१५) को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा

यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।

यद्दंष्ट्रानखलांगुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते

तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥ (हितो० १.)

(१६) धिक् सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग्भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ॥ (वेणी० ३.)

(१७) जलानि सा तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम् (रघु० १३.६१.)

(१८) प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् ।
न चकार शरीरमग्निसात्सह देव्या न तु जीविताशया ॥ (रघु० ८.७२.)

संस्कृत में अनुवाद करो

(१) आग्रह करने पर (अनुबन्ध क्रि॰ परस्मै॰) वह बाला द्वारा तुम्हारी अभिनय से (अन्तरेण) परिचित की गई।

(२) पुष्पपुर के चारों ओर एक सुन्दर उद्यान है।

(३) आह! मेरा दुर्भाग्य, मेरा इकलौता पुत्र भी मर गया, यह समाचार मिला है।

(४) उसने ३ वर्ष, ७५ दिन तक न्याय का अध्ययन किया और अब उसमें वह विख्यात होगया है।

(५) अवन्ति से २ मील तक चारों ओर सुन्दर उद्यान देखे जाते हैं।

(६) क्या वह अब तक होश में नहीं आई है, मेरे विचार यह अधिक अच्छे उपचार के बिना असंभव है।

(७) मणिपुर के निवासी उस नगर में मेरे पूर्व पराक्रमों के विषय में क्या सोचेंगे।

(८) अब हमको (प्रति) अपने संवाद के विषय की ओर लौटना उचित प्रतीत होता है।

(९) उनको धिक्कार, जो अपने लाभ के न होने पर दूसरों को सताते हैं।

(१०) उन पर शोक है जो असन्मार्ग के अनुयायी हैं।

(११) राम चित्रकूट पर्वत पर कुछ दिनों तक रहा।

(१२) नौकर ने सम्राज्ञी को सूचना दी कि महाराज क्रीड़ाशैल पर बैठे हैं और उन्होंने तुमको बिना विलम्ब बुलाया है।

(१३) जब उसको संज्ञा हुई तो उसने अपने मृत भ्राता के शरीर का दाह किया और तत्पश्चात् सारी रात चटाई पर सोई।

(१४) वह गौ पाताल में, जिसके द्वार बड़े नागों से बन्द हैं रहती है (अधि+स्था)

(१५) आमों की मंजरियों के बिना वसन्त सुन्दर नहीं लगता।

(१६) उस युवा यति के गमन के पश्चात् (अनु) तुमने मुझ से क्या कहा था यह मुझ को याद नहीं है।

(१७) तुम क्या कहते हो? तुम यह कहते हो कि हमारे महाराज के अतिरिक्त और कोई क्षत्रिय नहीं है, धिक्कार धूर्तों, मैं तुम्हारी पताका छीनता हूँ। यदि तुम में सामर्थ्य हो तो उसकी रक्षा करो।

चतुर्थ पाठ
द्विकर्मक क्रिया

(३८) संस्कृत में कुछ ऐसी क्रियाएँ हैं जिनका साधारण मुख्य कर्म के अतिरिक्त अकथित संज्ञक गौणकर्म भी होता है। अकथित संज्ञा ही इस बात को बतलाती है कि वह अपादान या अधिकरण आदि किसी दूसरे कारक द्वारा कथित नहीं है अर्थात् उन कारकों द्वारा उसका कथन कर्ता को विवक्षित (कहना इष्ट) नहीं है और इसलिए वह वैकल्पिक होता है अर्थात् वह विवक्षानुसार द्वितीया या अन्य विभक्तियों में भी आ सकता है यथा- **धेनुं दोग्धि पयः** (सि० कौ०) - वह गौ से दूध दुहता है, **व्रजमवरुणद्धि गाम्** (सि० कौ०) - वह बाड़े में गौ को रोकता है। यहाँ धेनु और व्रज अकथित या अपादानत्व तथा अधिकरणत्व में अविवक्षित कर्म हैं। यदि वक्ता उनको कर्मरूप से कहना नहीं चाहता तो वे अपनी स्वाभाविक विभक्तियों (पञ्चमी तथा सप्तमी) में प्रयुक्त हो सकते हैं यथा- **धेन्वाः (पञ्चमी) पयो दोग्धि, व्रजे (सप्तमी) अवरुणद्धि गां।**

(३९) द्विकर्मक धातुएँ निम्नलिखित कारिका में परिगणित हैं:—

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमन्थ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

दुह् = दुहना, याच् = माँगना, पच् = पकाना, दण्ड् = दण्ड देना, रुध् = रोकना या पुष्ट करना, पृच्छ् = पूछना, चि = संग्रह करना, ब्रू = कहना, शास् = शिक्षण करना, जि = (दाँव आदि में) जीतना, मंथ् = मथना, मुष् = चुराना, नी, हृ,

कृष, वह (इन चारों धातुओं का अर्थ लेजाना है) उपर्युक्त धातुओं की समानार्थक धातुओं के योग में मुख्य कर्म के अतिरिक्त क्रिया के फल और व्यापार की आश्रयभूत दूसरी संज्ञा गौण कर्म में रहती है अर्थात् इनसब धातुओं के मुख्य और गौण दो कर्म होते हैं और वे द्वितीया विभक्ति में आते हैं यथा- गां दोग्धि पयः, बलिं याचते वसुधां = बलि से भूमि मांगता है, तण्डुलानोदनं पचति = चावलों का भात पकाता है, गर्गान् शतं दण्डयति = गर्गों पर सौ रुपए जुर्माना करता है, व्रजमवरुणाद्धि गां, माणवकं पंथानं पृच्छति = बालक से मार्ग पूछता है, वृक्षमवचिनोति फलानि = वृक्ष से फल संग्रह करता है, माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा = बालक से धर्म कहता है वा उसको धर्म की शिक्षा देता है, शतं जयति देवदत्तं = देवदत्त से सौ रुपए जीतता है, सुधां क्षीरनिधिं मुष्णाति = क्षीरसागर से अमृत मथता है, देवदत्तं शतं मुष्णाति = देवदत्त के सौ रुपए चुराता है, ग्राममजां नयति - हरति - कर्षति - वहति वा = बकरी को गाँव को लेजाता है, ये क्रमशः सब धातुओं के उदाहरण हैं। माणवकं धर्मं भाषते वक्ति वा, बलिं वसुधां भिक्षते, तां त्वां संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो (महा० १.१७१.२१) = हे विभावसु मैं तुझसे उसको स्वयंवर के लिए मांगता हूं। ये समानार्थक दूसरी धातुओं के उदाहरण हैं, क्योंकि भाष, वच, भिक्ष और वृ कारिका में आई हुई ब्रू और याच के पर्याय हैं।

टिप्पणी — चि, मुष, पच, मन्थ, रुध, जि, कृष, हृ और वह धातुओं

उक्त कारिका में परिगणित हैं तथापि उनके द्विकर्मक होने के उदाहरण संस्कृत के प्रामाणिक साहित्य में बहुत कम मिलते हैं।

(५०) इस प्रकार उपर्युक्त और उनकी समानार्थक धातुओं के दो कर्म होते हैं उनमें से एक मुख्य कर्म और दूसरा गौण कर्म कहलाता है। उपर्युक्त दुह् से मुष् तक पहिली १२ धातुओं के पयः, वसुधां, फलानि, सुधां, आदि मुख्यकर्म हैं और गां, बलिं, वृक्षं, क्षीरनिधिं आदि गौण कर्म हैं क्योंकि वे वक्ता की विवक्षानुसार दूसरी विभक्तियों में भी आसकते हैं। अन्तिम चार धातुओं में अजा मुख्य कर्म है और ग्राम गौण कर्म है इस ~~जो~~ प्रकार जो क्रिया के भाव को पूर्ण करने के लिए द्वितीया विभक्ति में आता है, वही मुख्य कर्म है और जो वक्ता की इच्छा पर निर्भर रहकर द्वितीया विभक्ति में आसकता है वह गौण कर्म है।

(५१)× कर्मवाच्य में उपर्युक्त पहिली बारह द्विकर्मक धातुओं का गौण कर्म और अन्तिम ४ धातुओं का मुख्य कर्म प्रथमा विभक्ति में आता है और दूसरा कर्म कर्तृवाच्य के समान द्वितीया विभक्ति में ही रहता है।

यथा —

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स धेनुं पयो दोग्धि।	तेन (तृ॰) धेनुः (प्र॰) पयो (द्वि॰) दुह्यते।
देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः।	देवैः समुद्रः (प्र॰) सुधां (द्वि॰) ममंथे।
सोऽजां ग्रामं नयति हरति कर्षति वहति वा।	तेनाजा (प्र॰) ग्रामं (द्वि॰) नीयते ह्रियते कृष्यते उह्यते वा।

× गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्। लादयो मताः (सि॰ कौ॰)

अभ्यासार्थ संस्कृत वाक्य (क)

(१) आज्ञापितास्मि देव्या धारिण्या अचिरप्रवृत्तोपदेशं छलितं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम् (माल० १)।

(२) ह्यस्तत्रभवतीरावती देवी सुखं प्रष्टुमागता। (माल० ४.)

(३) महाश्वेता कादंबरीमनामयं पप्रच्छ। (काद० ४.६२.)

(४) हिमालयं सर्वशैला वत्सं परिकल्प्य
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च
पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् (कुमार० १. २.)

(५) संकल्पितार्थे विवृतात्मशक्तिमाखण्डलः काममिदं बभाषे ।(कुमार० ३.२.)

(६) सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टिं विद्युत्वानिव चातकैः,
अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रसूतिं प्रति याचितः।(कुमार० ६. २७.)

(७) किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानां,
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा॥ (रघु० ५.३३)

तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः॥ (रघु. ८. १२)

अथ ज्येष्ठां सुराः सर्वे देवकार्यचिकीर्षया।
शैलेन्द्रं वरयामासुर्गङ्गां त्रिपथगां नदीम् ॥ (रामायणबाल.३५.१६)

अभ्यासार्थ संस्कृत वाक्य (ख)

(१) तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम्।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः॥ (रघु० १. ५८.)

(२) तं क्रमेण जन्मभूमिं जातिं विद्यां कलत्रमपत्यानि विभवं वयः प्रमाणं प्रव्रज्याकारणं च स्वयमेव पप्रच्छ चन्द्रापीडः।(कादं॰ २२५)

(३) कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते॥ (रघु॰ ११.१)

(४) तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥ (गीता २.१.)

(५) भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गंगां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम्॥ (मुद्रा॰ ३.)

(६) तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव॥ (मेघ॰ १०४)

(७) सो ऽपृच्छल्लक्ष्मणं सीतां याचमानः शिवं सुरान्।
रामं यथास्थितं सर्वं भ्राता ब्रूते स्म च विक्लवः॥

(८) संदृश्य शरणं शून्यं भिक्षमाणो वनं प्रियाम्।
प्राणान्दुहन्निवात्मानं शोकं चित्तमवारुधत्॥

(९) गता स्यादवचिन्वाना कुसुमान्याश्रमद्रुमान्।
आ यत्र तापसान् धर्मं सुतीक्ष्णः शास्ति तत्र सा॥ (भट्टि॰ ६.८-१०)

संस्कृत में अनुवाद करो

(१) मैंने उससे दश प्रश्न पूछे परन्तु उसने उनमें से एक का भी उत्तर नहीं दिया।

(२) भिक्षुक ने उदारता के लिए प्रसिद्ध धनी से ५० रुपए माँगे।

(३) राजा ने अपराधी पर ३६० रुपए का जुर्माना किया।(दण्ड्)

(४) उपाध्याय इन शिष्यों को न्याय और व्याकरण के तत्त्वों की शिक्षा देता है (शास्)।

(५) राजा मंत्री से अपने सेवकों के अपराध क्षमा करने के (क्षम्) लिए याचना किया गया (याच्)।

(६) वह मुझसे कहता है कि गोपाल ने उसकी गौएँ दुह ली हैं।

(७) महाशय, मैंने तुम्हारा नाम और कुल पूछा था, यह नहीं कि तुम्हारे पास कितना धन है।

(८) क्षीरसागर में से १४ रत्न मथे गए।

(९) गडरिया बाजार को सब बकरियाँ ले गया और उनको बेच दिया।

(१०) कल मेरी कनिष्ठ पुत्री से गौएँ दुही गई थीं।

(११) देवता ब्रह्मा के पास गए और उससे तारक से रक्षा करने वाले (त्रातृ) को माँगा (वृ)।

पञ्चम पाठ

प्रेरणार्थक (ण्यन्त)

(४२) किसी धातु की प्रेरणार्थक प्रक्रिया यह प्रकट करती है कि धातु से व्यक्त व्यापार वा कार्य को करने लिए कोई पुरुष वा पदार्थ किसी अन्य पुरुष वा पदार्थ को प्रेरणा करता है। यथा— गम् = जाना, गच्छति = वह जाता है, तं गमयति = वह उसको जाने की प्रेरणा करता है, अश् = खाना, अश्नाति = वह खाता है, तं आशयति = वह उसको खिलाता है।

(४३) प्रेरणार्थक प्रक्रिया में मूल क्रिया का कर्ता तृतीया विभक्ति में प्रयुक्त होता है परन्तु कर्म पूर्ववत् द्वितीया में ही रहता है।

मौलिक	प्रेरणार्थक (ण्यन्त)
देवदत्त ओदनं पचति = देवदत्त भात पकाता है।	देवदत्तेनौदनं पाचयति = वह देवदत्त से भात पकवाता है।
रामो भार्यां त्यजति = राम पत्नी को त्यागता है।	रामेण भार्यां त्याजयति = वह राम से पत्नी को त्याग करवाता है।

(४४)* गति, बुद्धि (ज्ञान वा सूचना), प्रत्यवसान (किसी प्रकार का भक्षण) और इन्हीं की समानार्थक धातु वा शब्द कर्म वाली धातुओं (अर्थात् जिन का कर्म कोई शास्त्र ग्रन्थ हो) और अकर्मक धातुओं का मौलिक कर्ता प्रेरणार्थक प्रक्रिया में द्वितीया विभक्ति में आता है और कर्म पूर्ववत् वैसे का वैसा ही रहता है।

---

* गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ। (१-४-५२)

मौलिक	प्रेरणार्थक (ण्यन्त)
शत्रवः स्वर्गमगच्छन्।	शत्रून् स्वर्गमगमयत्।
स्वे वेदार्थमविदुः।	स्वान् वेदार्थमवेदयत्।
देवा अमृतमाश्नन्।	देवानमृतमाशयत्।
विधिर्वेदमध्येत।	विधिं वेदमध्यापयत्।
पृथ्वी सलिले आस्त।	पृथ्वीं सलिले आसयत् ※

किन्तु 'गमयति रामो गोविन्दं' (राम गोविन्द को जाने की प्रेरणा करता है) में यदि कोई दूसरा पुरुष विष्णुमित्र राम को यह कार्य करने की प्रेरणा करता है तो हम 'विष्णुमित्रो रामेण गोविन्दं गमयति' अर्थात् विष्णुमित्र राम से गोविंद को जाने की प्रेरणा करता है। यहाँ राम द्वितीया विभक्ति में नहीं है क्योंकि वह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्ता है मौलिक क्रिया का नहीं।

टिप्पणी — महामुनि पतञ्जलि ने अपने भाष्य में 'गतिबुद्धि' इत्यादि सूत्र में आने वाले शब्दकर्म की यह व्याख्या की है — शब्दकर्म का अर्थ 'शब्दो येषां क्रिया वा शब्दो येषां कर्म' हो सकता है, जब हम पहिला अर्थ लेते हैं तो ह्वयति (ह्वे) क्रन्दति (क्रन्द्) और शब्दायते (शब्द का नाम धातु) इस नियम से बाहर हो जाती हैं। यथा — ह्वयति देवदत्तः, ह्वाययति

※ ये उदाहरण निम्नलिखित कारिका में निबद्ध हैं —

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्। आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम्। आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः॥

देवदत्तेन, क्रन्दति - शब्दायते - देवदत्तः, क्रन्दयति - शब्दाय-यति - देवदत्तेन और श्रु, विज्ञा और उपलभ धातुएँ इस नियम के अन्तर्गत हो जाती हैं; यथा — शृणोति - विजानाति - उपलभते देवदत्तः; श्रावयति - विज्ञापयति - उपलम्भयति देवदत्तं। जब हम दूसरा अर्थ स्वीकार करते हैं तो जल्प्, आभाष्, विलप् भी इस नियम में सम्मिलित होनी चाहिएं, यथा - जल्पति - विलपति - आभाषते - देवदत्तः; जल्पयति - विलापयति - आभाषयति - देवदत्तं।

(४५) पूर्वोक्त नियम के कुछ अपवाद और अपवादापवाद हैं जो कि आवश्यक हैं —

(क) ※नी और वह् धातुओं का मौलिक कर्ता प्रेरणार्थक क्रिया में द्वितीया में नहीं होता किन्तु तृतीया में होता है यथा —

भृत्यो भारं नयति वहति वा = नौकर भार को ढोता है।	भृत्येन कृत्स्नं भारं नाययति वाहयति वा = नौकर से भार को ढुलवाता है।

किन्तु जब वह् का प्रेरणार्थक कर्ता नियन्ता (सारथि) का अर्थसूचक कोई शब्द हो तो साधारण नियम ही रहता है अर्थात् मौलिक कर्ता द्वितीया में ही रहता है। यथा —

वाहा रथं वहन्ति = घोड़े रथ को खींचते हैं।	सूतो वाहान् रथं वाहयति (सि० कौ०) = सारथि घोड़ों से रथ को खिंचवाता है।
वहन्ति यवान् बलीवर्दाः = बैल जौ ढोते हैं	वाहयति यवान् बलीवर्दान् (महाभाष्य) =

※ नीवह्योर्न। (वार्तिक); नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः। (वार्तिक)।

| वह बैलों से जौ खिलवाता है।

(ख)* अद् और खाद् धातु की प्रेरणार्थक प्रक्रिया में उनका मौलिक कर्ता तृतीया विभक्ति में आता है। यथा—

बटुरन्नमत्ति खादति वा = बालक अन्न खाता है।	बटुनान्नमादयति खादयति वा = बालक को अन्न खिलाता है।

(ग)¹ भक्ष् धातु की प्रेरणार्थक प्रक्रिया में जब उसका अर्थ हिंसा (चेतन सजीव पदार्थ को पीड़ा देना) न हो, मौलिक कर्ता तृतीया विभक्ति में आता है। यथा—

भक्षयति पिंडी देवदत्तः = देवदत्त पिन्नी खाता है।	भक्षयति पिण्डीं देवदत्तेन = देवदत्त को पिन्नी खिलाता है।

किन्तु

भक्षयन्ति यवान् बलीवर्दाः = बैल जौ खाते है।	भक्षयति बलीवर्दान् यवान् (महाभाष्य) = बैलों को जौ खिलाता है।

(घ) स्मृ और घ्रा धातुओं की प्रेरणार्थक प्रक्रिया में, जब उनसे ज्ञानविशेष सूचित हो तो उनका मौलिक कर्ता द्वितीया में नहीं आता किन्तु तृतीया में आताहै यथा— स्मरति-जिघ्रति-देवदत्तः = देवदत्त स्मरण करता है; सूंघता है; स्मारयति- घ्रापयति देवदत्तेन = देवदत्त को स्मरण कराता है; सुंघाता है।

कभी कभी स्मृ के साथ विशेषतः जब उसका अर्थ खेद के साथ स्मरण करना होता है तो मौलिक कर्ता द्वितीया में आता है यथा— अपि चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्तपार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृतीः (मुद्रा० १.) = क्या चन्द्रगुप्त के दोष प्रजाओं को पिछले राजा

---

* आदिखाद्योर्न (वार्तिक)। १ भक्षेरहिंसार्थस्य न। (वार्तिक)

राजा के गुणों की याद दिलाते हैं। इदं महदेवायुक्तं यदनिलो वियोगिनो: वरतनुं स्मरयति (शिशु॰ ६. ५६) = यह बड़ा अनुचित है कि वायु वियोगियों को सुन्दरी की याद दिलाता है।

(ङ)* दृश् धातु की प्रेरणार्थक प्रक्रिया में उस का मौलिक कर्ता द्वितीयाविभक्ति में आता है। यथा- भक्ता हरिं पश्यन्ति; दर्शयति भक्तान् हरिं (सि॰ कौ॰)।

टिप्पणी — कभी कभी प्रामाणिक साहित्य में दृश् धातु के योग में द्वितीया के स्थान में चतुर्थी का प्रयोग देखा जाता है। यथा — प्रत्यभिज्ञानरत्नञ्च रामाया- दर्शयत्कृती (रघु॰ १२. ६४) = उस कृतकृत्य ने राम को पहिचान का रत्न दिखलाया।

(च)+ हृ और कृ तथा आत्मनेपद में प्रयुक्त अभिवद् और दृश् की प्रेरणार्थक प्रक्रिया में मौलिक कर्ता द्वितीया और तृतीया में से किसी विभक्ति में आसकता है। यथा-

भृत्यः कटं करोति हरति वा = नौकर चटाई बनाता है वा लेजाता है।	भृत्यं भृत्येन वा कटं कारयति हारयति वा (सि॰ कौ॰) नौकर से चटाई बनवाता है वा लिवा लेजाता है।

इसी प्रकार अभिवादयते - दर्शयते- देवं भक्तं भक्तेन वा (सि॰ कौ॰) = वह भक्त को देवता का दर्शन कराता है वा उससे देवता को प्रणाम कराता है।

(४६) ४४वें नियम में अकर्मक धातु शब्द से उन धातुओं का ही ग्रहण होता है जिन का देश और काल आदि से भिन्न कर्म हो ही नहीं सकता, उन सकर्मक धातुओं का नहीं जिनका कर्म अविवक्षित हो वा स्पष्ट होने के कारण न कहा गया हो। यथा- पच् धातु सकर्मक है किन्तु उसका कर्म सुगमता से ही ऊह्य होने

---

* दृशेश्च। (वार्तिक)। + हृक्रोरन्यतरस्याम्। (१-४-५३)

के कारण वह बिना कर्म के ही प्रयुक्त हुई है। अतः किंकरेण पाचयति होता है किंकरं नहीं, किन्तु मासमासयति देवदत्तं = देवदत्त को महीने भर तक बैठाता है ऐसा प्रयोग होता है।

५८) [1] प्रेरणार्थक क्रियाओं के कर्मवाच्य में प्रेरणार्थक धातु का मुख्य कर्म, (जो उसकी मौलिक दशा में उसका कर्ता होता है,) प्रथमा में आता है और दूसरा ~~मौलिक~~ कर्म वैसे का वैसा ही रहता है (द्वितीया में आता है); यथा

मौलिक	प्रेरणार्थक (ण्यन्त) कर्तृवाच्य	प्रेरणार्थक (ण्यन्त) कर्मवाच्य
रामो ग्रामं गच्छति = राम गाँव को जाता है	रामं ग्रामं गमयति = (वह) राम को ग्राम को भेजता है।	रामो ग्रामं गम्यते = राम ग्राम को भेजा जाता है।
भृत्यः कटं करोति = सेवक चटाई बनाता है।	भृत्येन भृत्यं वा कटं कारयति = (वह) सेवक से चटाई बनवाता है।	भृत्यः कटं कार्यते = सेवक से चटाई बनवाई जाती है।
गोविन्दो मासमास्ते = गोविन्द महीने भर तक बैठता है।	गोविन्दं मासमासयति = गोविन्द को महीने भर तक बैठाता है।	गोविन्दो मासमास्यते = गोविन्द महीने भर तक बैठाया जाता है।

(क) किन्तु बुद्धि (ज्ञान) और भक्षण अर्थ वाली तथा शब्दशास्त्रीय (ग्रन्थ) कर्म वाली धातुओं के प्रयोग में मुख्य कर्म प्रथमा में तथा गौण कर्म द्वितीया में आता है या इसका परस्पर विपर्यय भी हो सकता है; यथा— माणवकं धर्मं बोधयति = बालक को धर्म सिखलाता है। माणवको धर्मं बोध्यते = बालक धर्म सिखलाया

---

[1] बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणां च निजेच्छया।
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः॥ (सि॰कौ॰)

जाता है; वा माणवकं धर्मं बोध्यते = बालक को धर्म सिखलाता है। बटुमोदनं भोजयति = बालक को भात खिलाता है; बटुरोदनं भोज्यते = बालक भात खिलाया जाता है वा बटुमोदनो भोज्यते (सि॰ कौ॰) = बालक को भात खिलाया जाता है।

(४८) चुरादि गण की धातुओं के रूप प्रेरणार्थक प्रक्रिया में भी मौलिक रूपों के ही समान होते हैं, अर्थ का निर्णय पौर्वापर्य से करना चाहिए; यथा— रामो धनं चोरयति = राम धन चुराता है; रामो गोविन्देन धनं चोरयति = राम गोविन्द से धन चुरवाता है। अन्तिम वाक्य में क्रिया प्रेरणार्थक है।

(४९) ४३वाँ तथा ४४वाँ नियम ४५वें नियम के अपवादों सहित द्विकर्मक धातुओं में भी लगता है अर्थात् गत्यर्थक आदि धातुओं का मौलिक कर्ता द्वितीया विभक्ति में तथा अन्य धातुओं का मौलिक कर्ता (अपवाद तथा प्रत्यवादों को ध्यान में रखते हुए) तृतीया में आता है; यथा— वामनो बलिं वसुधां याचते; (ईश्वरो) वामनेन बलिं वसुधां याचयति = (ईश्वर) वामन को बलि से पृथ्वी मांगने के लिए प्रेरणा करता है; गोपोऽजां नगरं हरति; (स्वामी) गोपं गोपेन वाजां नगरं हारयति = (स्वामी) गोप से बकरी को नगर को लिवा ले जाता है।

अभ्यासार्थ संस्कृत वाक्य (क)

(१) अभिमन्युतनयं परीक्षितमुदरादुपरतमेव निर्गतमुत्तराप्रलापोपजनितकृपो भगवान् वासुदेवो दुर्लभानसून् प्रापितवान्। (कादं० १०२)

(२) अयं शिशुर्न शक्नोति शिरोधरां धारयितुं। तदेहि गृहाणैनमवतारय सलिलसमीपमित्यभिधाय तेनर्षिकुमारेण मां सरस्तीरमनाययत्। उपसृत्य च जलसमीपं स्वयं मामादाय मुक्तप्रयत्नमुत्तानितमुखमङ्गुल्या कतिचित् सलिलबिन्दूनपाययत्। (कादं० ३४)

(३) काम इदानीं सकामो भवतु येनासत्यसंधे जने सखी पदं कारिता। (शकु० ४)

(४) महेन्द्रभवनं गच्छतोपाध्यायेन स्वमासनं प्रतिग्राहितः। (वि० ३)

(५) तौ कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य पोषितौ परिरक्षितौ च। वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितराः विद्याः सावधानेन परिपाठितौ। समनन्तरं च गर्भादेकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ। (उत्तर० २)

(६) नलिनिके पायय कमलमधुरसं कलहंसान्। पल्लविके भोजय मरिचाग्रपल्लवदलानि भवनहारीतान् (कादं० १०४)।

(७) आर्ये दापयतु मे वैशंपायनानयनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन। नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति। (कादं० १८०)।

(८) तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं,
प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः। (रघु० २.७०)

(९) ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो रथशिक्षामशिक्षयत् (महा० १.१३०.२५)

(१०) तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः ॥ (रघु० ९.७८)

(११) वाल्मीकिस्तौ कुशलवौ
साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम् ॥ (रघु० १५.३३)

(१२) स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि।
तेनोत्तीर्य पथा लंकां रोधयामास पिंगलैः।
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः॥(रघु० १२.७०-७१)

अभ्यासार्थ संस्कृत वाक्य (ख)

१) एवं क्रियतं युष्मदादेशः। किन्तु या यस्य युज्यते भूमिका तां तथैव भावेन सर्वे वर्गाः पाठिताः। (माल० १.)

(२) स कार्तान्तिकस्तां विलोक्य स्निग्धदृष्टिरचष्ट। भद्रे अस्ति कौशलं शालिप्रस्थेनानेन संपन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुमिति। (द० कु० ११.६.)

(३) ततो मया पाटलिपुत्रं गत्वा श्रावितोऽमात्यसंदेशं वैतालिकः स्तनकलसः।(मु० ४.)

(४) रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः।
वसतिं प्रिय कामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः॥(कुमार० ४.११)

(५) तामर्चिताभ्यः कुलदेवताभ्यः कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता।
अकारयत् कारयितव्यदक्षा क्रमेण पादग्रहणं सतीनाम्॥(कु० ७.२७.)

(६) प्रियागुणसहस्राणामेकोन्मीलनपेशलः।
य एव दुःस्मरः कालस्तमेव स्मारिता वयम्॥(उत्तर० ६.)

(७) शरैरुत्सवसंकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ (रघु॰ ४.७८)

(८) अथानाथाः प्रकृतयो मातृबंधुनिवासिनम् ।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः ॥ (रघु॰ १२.१२)

(९) त्वं रक्षसा भीरु यतोपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन् वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥ (रघु॰ १३.२४)

(१०) गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥ (किरात॰ १.३१.)

(११) यः पयो दोग्धि पाषाणं स रामाद्भूतिमाप्नुयात् ।
रावणं गमय प्रीतिं बोधयन्तं हिताहितं ॥

(१२) प्रीतोऽहं भोजयिष्यामि भवतीं भुवनत्रयम् ।
किं विलापयसेऽत्यर्थं पार्श्वे शाययं रावणम् ॥

(१३) आज्ञां कारय रक्षोभिर्मा प्रियाण्युपहारय ।
कः शक्रेण कृतं नेच्छदधिमूर्धानमञ्जलिम् ॥ (भट्टि॰ ८.८२-४)

(१४) विद्यामथैनं विजयां जयां च रक्षोगणं क्षिप्नुमविक्षतात्मा ।
अध्यापयद्गाधिसुतो यथावन्निघातयिष्यन्युधि यातुधानान् ॥ (भट्टि॰ ११.२१)

संस्कृत में अनुवाद करो

(१) हमने उसको उसका कर्तव्य जनाया (विद्) और उसको घर भेज दिया (प्र+स्था का ण्यन्त)।

(२) जब स्वाधीनता की इच्छा किसी मंत्री के हृदय में प्रवेश करती है तब वह स्वयं राजा से प्राण-त्याग करा देता है।

(३) उसने युद्ध में शत्रुओं को पराजित करके सूतों से अपने युद्ध के पराक्रमों को गवाया। (गै)

(४) उसने अपने नौकरों से बाज़ार से ईंधन मंगवाया। (नी या हृ)

(५) यह आश्चर्य नहीं है कि सम्राट् से सामन्तों से अपनी आज्ञापालन कराई जाती है।

(६) ये मनुष्य उन सेविकाओं द्वारा बनाई हुई पुष्पमालाएं लाने को कहे गए थे।

(७) जब विद्यार्थी को किसी विषय का सिद्धान्त बतला दिया जाता है तब उस को उसका प्रयोग सिखलाया जाता है।

(८) अपने शत्रुओं को पराजित करो और उनसे कर दिलाओ। (दा)

(९) उसने अपने पुत्र के विवाह के लिए अपने सेवकों से एक विशाल मंडप बनवाया (कृ)।

(१०) उसने बालक को उसकी इच्छा के विरुद्ध भोजन कराया (अद् या खाद्)।

(११) मैंने अपने प्रतिष्ठित अतिथि को अपना पुस्तकालय दिखलाया (दृश्)।

(१२) वह यात्रियों से मार्ग द्वारा बनारस का मार्ग पुछवाता है।

(१३) स्वामी से भेड़ें नौकरों से ग्राम को भिजवाई गईं। (वह्)

(१४) नौकर से स्वामी से अपने को उस का इच्छानुवर्ती बन कर पारितोषिक दिलवाना चाहिए।

(१५) मैंने उनको राजा के चारों ओर खड़ा किया और उनसे उसको प्रणाम करवाया। (अभि + वद्)

(१६)

षष्ठ पाठ
तृतीया-विभक्ति

(५०)* संस्कृत में तृतीया विभक्ति के दो उद्देश्य हैं वह या तो किसी कार्य के कर्ता का निर्देश करती है या किसी कार्य के साधन या करण को बतलाती है; यथा — ततो देव्या किमभिहितं (वेणी० १.) = तब देवी से क्या कहा गया? संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू (वे० १.) = क्या मैं गदा से सुयोधन की जंघाएं चूर्ण नहीं करूंगा? तामेव दिव्ययोषितं चक्षुषा पुनर्निरूपयामास (काद० १३१.) = उसी दिव्य स्त्री को फिर नेत्रों से देखा।

(५१) तृतीया द्वारा द्योतित करण के विविध संबन्ध हो सकते हैं —

(क) किसी कार्य को करने का प्रकार या किसी संज्ञा का विशेष गुण; यथा — आत्मानुरूपां विधिनोपयेमे (कुमार० १.१८) = उसने उस अपने तुल्य को विधि से विवाहा (प्रकार)। प्रकृत्या दर्शनीयः (महाभाष्य) = स्वभाव से सुन्दर है (विशेष गुण)। माथुरोऽस्मि गोत्रेण (महा०) = मैं गोत्र से माथुर हूं (विशेष गुण)। विषमेण धावतीति (महाभाष्य) = ऊंचा नीचा दौड़ता है (प्रकार)। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति = दो दो द्रोण करके धान क्रय करता है। साहस्रेण पशून् क्रीणाति = सहस्र सहस्र करके पशुओं को क्रय करता है। शतेन शतेन पाययति वत्सान् = सौ सौ करके बछड़ों को जल पिलाता है।

(ख) क्रय की हुई वस्तु का मूल्य; यथा — कियता मूल्येन क्रीतं पुस्तकं = पुस्तक किस मूल्य से क्रय की गई।

(ग) गत्यर्थक क्रियाओं के योग में वाहन करण हो जाता है; यथा —

---

* कर्तृकरणयोस्तृतीया। (२१.३.१८)

आत्मनः पदं विमानेन विगाहमानः (रघु॰ १३.१.) = अपने स्थान (आकाश) को विमान से आलोडित करते हुए)

(घ) नयनार्थक या स्थापनार्थक क्रियाओं के योग में नीत (लेजाई हुई) या स्थापित पदार्थ करण (तृतीया) से द्योतित होता है। यथा — स श्वानं स्कन्धेनोवाह (हितो॰ ४.) = उसने कुत्ते को अपने कंधे पर उठाया। भर्तुराज्ञां मूर्ध्नादाय (कुमार॰ ३.२२.) = अपने स्वामी की आज्ञा को मस्तक से धारण करके।

(ङ) शपथ के शब्द अर्थात् जिस के नाम से शपथ लीजाती है करण (तृतीया विभक्ति) में आते हैं यथा — जीवितेन शपामि ते (कादं॰) = तेरे लिए मैं अपने जीवन की की शपथ खाता हूँ।

(च) किसी विशिष्ट स्थान को जाने की दशा या मार्ग ही करण (तृतीया विभक्ति) में आता है; यथा — कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः (विक्रमो॰ १.) = वह धूर्त किस दिशा को गया।

(५२) अतिशयार्थक और समानार्थक क्रियाओं के योग में अतिशयन और समानता के गुण विशिष्ट पद करण (तृतीया) में प्रयुक्त होते हैं; यथा — पूर्वान् महाभाग तया (भक्त्या) अतिशेषे (रघु॰ ५.१४.) = हे महाभाग तुम भक्ति द्वारा पूर्वजों का अतिशयन (अतिक्रमण) करते हो। स्वरेण रामभद्रमनुहरति (उत्तर॰ ४.) = वह स्वर से राम के समान है।

द्रष्टव्य (टिप्पणी) — कभी कभी इस अर्थ में सप्तमी का भी प्रयोग होता है; यथा — धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्मे इवापरः (रामा॰ १.१८) = वह

दान में कुबेर के तुल्य और सत्य में धर्म के तुल्य था।

(क) जिससे वियोग हुआ हो उसका द्योतक पद साधारणतः करण (तृतीया) में आता है। यथा – अयमेकपदे तया वियोग उपनतः (विक्रमो॰ ४.) = यह वियोग उससे अकस्मात् होगया। माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः (मेघ॰११८.) = इस प्रकार तेरा विद्युत से क्षण भर वियोग न होवे।

(ख) समानता वा तुलनाद्योतक शब्द भी करण (तृतीया) में आते हैं; यथा– धनदेन समस्त्यागे (रामायण) = दान में कुबेर के तुल्य। अस्य मुखं सीताया मुखचन्द्रेण संवदति (उत्तर॰) = इसका मुख सीता के मुखचन्द्र से मिलता है (षष्ठी विभक्ति का प्रयोग देखो)

(५३)* अपवर्ग (किसी अभीष्ट की फलप्राप्ति वा पूर्ति) के द्योतक समय वा स्थान के योग में तृतीयाविभक्ति होती है; यथा– द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणं श्रूयते (पञ्च॰१.) = बारह वर्षों में व्याकरण आता है। क्रोशेन पाठस्तेनाधीतः (सि॰कौ॰) = उसने एक कोस (चलते हुए) पाठ पढ़ लिया।

(५४)[§] जब कोई पद करण (साधन) से भिन्न हेतु का द्योतक हो तो वह तृतीया विभक्ति में आता है यथा – गुरो भक्त्या प्रीतास्मि ते (रघु॰ २.६३) = मैं गुरु में तेरी भक्ति से प्रसन्न हूँ। अतिदवीयस्तया च तस्य प्रदेशस्य न किंचिद्ददर्श (कादं॰) = उस प्रदेश के अतिदूर होने के कारण उसने कुछ न देखा।

(क) उद्देश और प्रयोजन भी तृतीया विभक्ति में आता है यथा – अध्ययनेन वसति (सि॰कौ॰) = अध्ययन के प्रयोजन से रहता है।

---

* अपवर्गे तृतीया। (२-३-६) | § हेतौ। (२-३-२३)

द्रष्टव्य – जो तृतीयाविभक्ति संतोष, प्रसन्नता, विस्मय और लज्जा अर्थ वाली क्रियाओं के योग में आती है वह भी उपर्युक्त नियम के अन्तर्गत है यथा – कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति (पञ्च० १. १.) = नीच पुरुष थोड़े से भी संतुष्ट होजाता है। उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये (रघु० १५.६८.) = मनुष्य उन दोनों की प्रवीणता पर वैसे चकित नहीं हुए। अनेन प्रागल्भ्येन लज्जे = मैं इस ढिठाई पर लज्जित हूँ।

(५५)* किसी अंगविकार को प्रकट करने वाले विशेषण के योग में विकृत अंग तृतीयाविभक्ति में आता है यथा – अक्ष्णा काणः, पादेन खञ्जः, कर्णेन बधिरः (सि०कौ०)।

(५६)§ किसी विशेष लक्षण या अवस्था को द्योतन करने के लिए विशिष्टताद्योतक पद भी तृतीयाविभक्ति में आता है यथा – जटाभिस्तापसः (सि० कौ०) = वह जटाओं से (जटाओं के लक्षण से) तपस्वी है।

(५७) पर्याप्त्यर्थक अलं और कृतं अव्ययों के योग में भी तृतीयाविभक्ति आती है यथा – अलमतिविस्तरेण (विक्रमो० १.) = अतिविस्तार से बस। कृतमश्रुभिः (उत्तर० ५.) = थोड़े से बस। तस्मात्कृतं चरणपातविडम्बनाभिः (पञ्च० ४. १) इसलिए चरणपात की विडम्बनाओं से बस।

(क) कभी कभी इस अर्थ में अलं ल्यान्त अव्यय के साथ में प्रयुक्त होता है यथा – अलमन्यथागृहीत्वा (माल० १.) = इस को दूसरे प्रकार समझने से बस अर्थात् इसको ऐसा न समझो। इस अवस्था में यह प्रयोग नि-

---

*येनाङ्गविकारः। (२-३-२०) §इत्थंभूतलक्षणे (२-३-२१)।

सेधार्थक ही होता है।

(५८)* सह, साकं, सार्धं, समं आदि साहचर्य द्योतक पदों के योग में जिनको साहचर्य विवक्षित है उनमें से अप्रधान सहचर वाचक पद तृतीया में आता है यथा- त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु (उत्तर० २०) = मैं तेरे साथ वनों में रहूँगी। अमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः (उत्तर० ३०) = हम सखियों के साथ में देवनदी (गंगा) आदि। आस्व साकं मया सौधे (भट्टि० ८.७९.) = मेरे साथ महल में बैठ।

(५९) प्रयोजन वा आवश्यकता द्योतक किम्, कार्यं, अर्थः, प्रयोजनं, गुणः आदि के समान पद और इसी अर्थ में प्रयुक्त किं के साथ कृ धातु के योग में प्रयोज्य वा अभीष्ट पद तृतीया में आता है और उस प्रयोजन को रखने वाला षष्ठी में आता है; यथा- देवपादानां सेवकैर्न प्रयोजनं (हितो० १०) = महाराज का सेवकों से प्रयोजन नहीं है। तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां (पञ्च० १.१) = स्वामियों का तिनके से भी कार्य होता है। किं तया क्रियते धेन्वा (पञ्च०) = उस गौ से क्या? किं तया दृष्ट्या (श० २०) = उस के देखने से क्या? अयमानेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः (मुद्रा० १०) = स्वामिभक्त मूर्ख सेवक से क्या गुण है?

द्रष्टव्य - महामुनि पाणिनी ने 'दिवः कर्म च' (१-४-४३) सूत्र में यह शासन दिया है कि दिव धातु के योग में द्वितीया वा तृतीया विभक्ति आती है; यथा- अक्षैरक्षान् वा दीव्यति = वह पासों से खेलता है।

तथा 'संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि' (२-३-२२) सम् पूर्वक ज्ञा धातु के योग में कर्म कारक में विकल्प से तृतीया वा द्वितीया विभक्ति हो। यथा- पित्रा पितरं

---

* सहयुक्तेऽप्रधाने। (२-३-१९)।

वा संजानीते = वह पिता से सहमत रहता है।

अभ्यासार्थ संस्कृतवाक्य (क)

(१) अलमलं बहु विकत्थ्य। मा त्वं नः समक्षमेवानयोरघोरोत्तरव्यतिक्रमिष्यसि (माल० ५)

(२) देवेन देव्या च परिगृहीतोऽहममुना हरदत्तेन प्रधानपुरुषसमक्षमयं न मे पादरजसा तुल्य इत्यधिक्षिप्तः। (माल० १.)

(३) शापितासि मम लवंगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि (माल० ८)

(४) आगन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः। (शाकु० ६)

(५) भगवति तमसे अयं (करिकलभकः) तावदीदृशः संवृत्तः। तौ पुनर्न जाने कुशलवाविति तावता कालेन कीदृशाविव भवतः। (उत्तर० ३.)

(६) चन्द्रापीडस्य सहपांशुक्रीडितया सहसंवृद्धतया च सर्वविश्रम्भस्थानं द्वितीयमिव हृदयं वैशम्पायनः परं मित्रमासीत्। (कादं० ७६.)

(७) अलमतिमन्त्रणया। कृतमतिप्रसादेन। भगवति प्रसीद विमुच्यतामयमस्मादम् इति तामब्रवीत्। (कादं० १३३.)

(८) उपरते चास्मिन् तस्य जरद्द्रविडधार्मिकस्येच्छया निसृष्टैर्धननिसरैः पूरयित्वा मनोरथमभिमतमभिरमणीयेषु प्रदेशेषु निवसन्नल्पैरेवाहोभिरुज्जयिनीमाजगाम। (कादं० २२८.)

(९) अलमुपालम्भ। आर्य दैवेनेदमनुष्ठितं किमत्रार्यस्य। (मुद्रा० ३.)

(१०) अयि पाञ्चालतनये अलं निर्वेदेन। किं बहुना। अवधीर्यतां तच्छ्रूयताम्। अचिरेणैव कालेन सुयोधनशोणितशोणपाणिस्तव कचान् भीम उत्तंसयिष्यति। (वेणी० १.)।

(११) स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तनामुना जिह्रेमि। (कादं० २३३)

(१२) प्रवातशयने निषण्णा देवी परिजनहस्तगृहीतेन चमरेण चरणेन परि-
व्राजिकया कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति। (मृच्छ० ४)

(१३) मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती
रतिरिव मूर्तिमती विभाति सेयम्। (मृच्छ० ४)

(१४) शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः॥ (शकु० १)

(१५) शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी॥ (रघु० ३.२)

(१६) यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (गीता १०.५)

(१७) किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान्॥ (पञ्च. १)

अभ्यासार्थ संस्कृत वाक्य (ख)

(१) अधुनाऽन्या गतिर्नास्ति। अकथ्यमाने च महाननर्थोपनिपातो जायते
प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदसव इति कथयामि। (कादं० १५२)

(२) तेषु तेषु रमणीयेषु स्थानेषु तया सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि
न केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह कादम्बरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु पुण्ड-
रीकेण सह पुण्डरीकोऽपि चन्द्रमसा सह परस्पराविरहयोगेन सर्व एव सर्व-
कालं सर्वसुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन्। (कादं० ३६९)

(३) अवधूतप्रणिपाताः पश्चात्संतप्यमानमनसोऽपि।
निभृतैर्व्यपलपन्ते दयितानुनयैर्मनस्विन्यः॥ (उत्तर० १.)

(४) कष्टं जनः कुलधनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि॥ (उत्तर० १

(५) अत्र दुर्लङ्घ्यशासनतया भगवतो मनोभुवो मंदजननतया च मधुमासस्यातिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्याविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य चंचलप्रकृतितया चेन्द्रियाणां दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणां तथा भावितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुनः तथाविधोऽपि तस्यैतामनयपदवीं गतः। (काद० १४३.)।

(६) विनाप्यर्थैर्वीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः।
स्वभावादुद्भूतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते॥ (हितो० ९७.)

(७) अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य॥ (रघु० २.३४)

(८) कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन॥ (रघु० ६.७९.)

(९) लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥ (भर्तृ० २.५५.)

(१०) अथ आर्यचाणक्यस्तिष्ठति –

यो नन्दमौर्यनृपयोः परिभूय लोक-
मस्तोदयौ प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम्।
पर्यायपातितहिमो मम सर्वगामि
धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्नः॥ (मुद्रा० ३.)

(११) भूषणाद्युपभोगेन प्रभुर्भवति न प्रभुः।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते॥ (मुद्रा० ३.)

(१२) आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च।
येषामेते षड्गुणाः न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण॥ (भर्तृ० २.४८.)

(१३) न तेन सज्जं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम्॥ (किरात० १.२१)

(१४) समुद्र इव गाम्भीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव।
विष्णुना सदृशो वीर्ये क्षमया पृथिवीसम॥ (राम० १. १०८.)

(१५) स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं संप्रति तेजसा रविः॥ (शाकु० १.७०.)

(१) संस्कृत में अनुवाद करो

(१) राजा को मानवधर्मशास्त्रानुसार अपनी प्रजाओं का पालन करना चाहिए।

(२) अपने प्राणों से भी अपने मित्र के प्राणों की रक्षा करनी चाहिए यह धर्म का आदेश है

(३) यह मनुष्य मूर्तिमान् लोभ है यह धनसंचय से संतुष्ट नहीं होगा।

(४) क्या तुम अपनी मूर्खता पर लज्जित नहीं हो ? क्या तुमको विद्यारहित अपने उच्च कुल का अभिमान है ?

(५) यह राजा शौर्य, विद्या और अपनी प्रजाओं को संतुष्ट रखने की इच्छा में सबसे बढ़कर है।

(६) तुम्हारी आज्ञाएँ दूसरे राजाओं को शिरोधार्य है यह तुम्हारी प्रभुता का एक बड़ा चिह्न है।

(७) वह मनुष्य अपने कंधे पर भेड़ को उठाए हुए था और इस मार्ग से सूनागृह को गया।

(८) मैं अपनी संरक्षक देवता की शपथ खाता हूँ कि मैंने तुम्हारी मुद्रा को पहले कभी नहीं देखा है।

(९) मैं जानता हूँ कि मेरे सेवक पन्द्रह दिनों में लौट आएंगे क्योंकि वहाँ उनके अधिक काल तक ठहरने का प्रयोजन ही क्या है ?

(१०) प्रगाढ़ और परम भक्तिपूर्वक ओ३म् का एक बार भी उच्चारण करने से पापी भी अपने सब पापों से छूट जाता है।

(११) इस आदमी के साथ चलने ~~क्या~~ का क्या प्रयोजन है ? वह अपनी दाहनी

टाँग से लँगड़ा है और शीघ्र (तेज़) नहीं चल सकता।

(१२) इस विषय में सन्देह से बस, यह विषय संपूर्ण है किन्तु मेरे बहनोई की संमति इस पर नहीं है।

(१३) मूर्ख, तुझको धिक्कार, इन पुस्तकों के भार से तुझको क्या लाभ? जब तू उनको पढ़ता ही नहीं।

(१४) मुझको धिक्कार से बस, यह मुझसे नहीं किया गया।

(१५) शिशु, रो मत जब तेरी माता यहाँ आएगी तो मैं तुझको उससे भोजन खिलवा दूँगा।

(१६) शकुन्तला ने अपने पति के ध्यान में तल्लीन होने के कारण दुर्वासा के शाप को नहीं सुना।

(१७) हे अंधे, इस प्रदीप का तुझको क्या लाभ है?।

सप्तमः पाठः
चतुर्थी विभक्ति

(६०)* जिस मनुष्य को कोई पदार्थ दिया जाता है वह संप्रदान कहलाता है। संप्रदान को द्योतित करने वाली संज्ञा चतुर्थी में आती है। यथा – किम् वस्तु विद्वन् गुरवे प्रदेयम् (रघु० ५.१८) = हे विद्वन् गुरु के लिए क्या वस्तु देनी है।

† जिस पुरुष या पदार्थ के लिए कोई कार्य किया जाता है वह भी संप्रदान ही होता है यथा – युद्धाय संनह्यते (महाभाष्य) = वह युद्ध के लिए तैयारी करता है। तां नन्दनाय प्रार्थयते (माल० मा०) = उस को नन्दन के लिए चाहता है।

(क) ५ यज् धातु के योग में जिस के लिए यज्ञ किया जाता है वह द्वितीया में, और जिस पदार्थ से यज्ञ किया जाता है वह तृतीया में आता है। यथा – पशुना रुद्रं यजते (सि० कौ०) = वह पशु से रुद्र को यज्ञ करता है।

(६१)* रुच्यर्थक धातुओं के योग में संतुष्ट होने वाला ५ पुरुष या पदार्थ चतुर्थी विभक्ति में आता है। यथा – यत्प्रभविष्णवे रोचते (अभि० शाकु० २.) = जो प्रभु के लिए रुचिकर हो; यज्ञदत्ताय स्वदते ऽपूपः (काशिका) = यज्ञदत्त को पूड़ा स्वादु लगता है।

(६२) × धृ (चुरादि) के योग में उत्तमर्ण, और ० स्पृह् के योग में ईप्सित पदार्थ चतुर्थी में आते हैं। यथा – वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे (अभि० शाकु० १.) = तू मेरी दो वृक्ष सींचने की ऋणी है। परिखीणो मनानां प्रसूतये स्पृहयति

---

*: कर्मणा यमभिप्रैति सोऽपि संप्रदानम् (१-४-३२) † क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि संप्रदानम् (वार्तिक) ५ यजेः कर्मणः करणसंज्ञा संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा। (वा०)

* रुच्यर्थानां प्रीयमाणः। (१-४-३३) | × धारेरुत्तमर्णः। ० स्पृहेरीप्सितः।(१-४-

(भट्टि० ३.४५) = दीन जो की लप चाहता है।

द्रष्टव्य – कभी कभी स्पृह् धातु से व्युत्पन्न शब्दों के योग में भी चतुर्थी विभक्ति आती है। यथा – भोगेभ्यः स्पृहयालवः (भट्टि० ३.६४) = भोगों के इच्छुक। कश्चमन्यो करिष्यन्ति ~~पुलिमसः~~ फुलेभ्यः पुलिमाः ~~स्पृ~~स्पृहां (के० सं० ३.) = अन्य पुत्र वाले पुत्रों की इच्छा क्यों करेंगे। किन्तु साधारणतः इस अवस्था में सप्तमी का प्रयोग होता है। यथा – स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी (रघु० ३.५.) = मागधी (सुदक्षिणा) किन वस्तुओं में इच्छा वाली है।

(६३)[8] क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य्, असूय् और इन्हीं की समानार्थक धातुओं के योग में जिसके प्रति कोप, घृणा वा ईर्ष्या आदि का भाव हो वह चतुर्थी विभक्ति में आता है। यथा – हरये क्रुध्यति द्रुह्यतीर्ष्यत्यसूयति वा (सि० कौ०) = वह हरि से क्रुद्ध है वा उससे द्रोह करता है वा उससे ईर्ष्या करता है।* किन्तु उपसर्ग सहित क्रुध् और द्रुह् के योग में द्वितीया विभक्ति आती है। यथा – मच्छरीरमभिद्रोग्धुम् (मु० रा० १.) = मेरे शरीर को हानि पहुँचाने के लिए। न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः (वे० सं० ३.) = क्या उस पर पिता क्रुद्ध नहीं है।

(६४)† प्रतिज्ञार्थक प्रति + आ उपसर्ग‡ पूर्वक श्रु धातु के योग में जिससे प्रतिज्ञा की

---

8 क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः। (१-४-३७) | * क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म। (१-४-३८) | † प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता। (१-४-४०)

जाय वह मनुष्य चतुर्थी में आता है। यथा — प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् (रघु० १५.४) = काकुत्स्थ ने उनसे विघ्नों के प्रतीकार करने की प्रतिज्ञा की।

(६५) १ जिस उद्देश्य के लिए कोई कार्य किया जाता है अथवा जिस पदार्थ के बनाने के लिए कोई पदार्थ विद्यमान या प्रयुक्त हो वे उद्देश्य और पदार्थ चतुर्थी विभक्ति में आते हैं यथा — काव्यं यशसे (काव्य प्रकाश १) = काव्य यश के लिए होता है। यूपाय दारु (महाभाष्य) = यह लकड़ी यूप के लिए है। कुण्डलाय हिरण्यं (महाभाष्य) = सोना कुण्डल के लिए (प्रयुक्त) है। अवहननायोलूखलम् (महाभाष्य) = कूटने के लिए ओखली।

(क) * जब किसी वाक्य में क्रियार्थी क्रिया का भाव गौण हो तो इस क्रियार्थी क्रिया का कर्म चतुर्थी विभक्ति में आता है। यथा — फलेभ्यो याति = फलान्याहर्तुं याति (सि० कौ०) = वह फलों के लिए जाता है अर्थात् फल लेने के लिए जाता है; वनाय गां मुमोच = वनं गन्तुं गां मुमोच = उसने वन के लिए (वन जाने के लिए) गौ को छोड़ा। यहाँ आहर्तुं और गन्तुं के कर्म फल और वन चतुर्थी विभक्ति में आए हैं।

(ख) २ किसी धातु की क्रियार्थी क्रिया (तुमुन्नन्त) के स्थान में उसी धातु का भाववाचक कृदन्त चतुर्थी विभक्ति में प्रयुक्त होता है। यथा — यागाय याति (यष्टुं याति), समिधाहरणाय (समिध आहर्तुं) प्रस्थिता वयम् (अभि० शा० १) = हम समिधा लाने के लिए चले हैं; यतिष्ये वः सखी प्रत्या-

---

१ तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या। * क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः। (२-३-१४)

२ तुमर्थाच्च भाववचनात्। (२-३-१५)।

नमनाम ~~[illegible]~~ (सख्यीं प्रत्यानेतुं) (वे. से. ९.) = मैं तुम्हारी सख्यी को लौ-टाने के लिए प्रयत्नता करूँगा। (यहाँ तक पृष्ठ ४४ तक मूल ग्रन्थ का अनुवाद है)

(६६)

005696